संत कवि मीराँबाई

विवेक भसीन
डॉ. बलदेव वंशी

संत कवि मीराँबाई

विवेक भसीन
डॉ. बलदेव वंशी

संत कवि मीराँबाई

विश्व संतमाला

संत कवि गुरु नानक : डॉ. महीप सिंह
संत कवि दादूदयाल : डॉ. बलदेव वंशी
संत कवि मलूकदास : डॉ. बलदेव वंशी
संत कवि कबीर : डॉ. बलदेव वंशी
संत कवि रज्जब : डॉ. बलदेव वंशी
संतप्रवर महामति प्राणनाथ : डॉ. बलदेव वंशी
संत कवि सहजोबाई : डॉ. बलदेव वंशी
संत कवि चरणदास : डॉ. बलदेव वंशी
संत कवि गुरु तेगबहादुर : डॉ. बलदेव वंशी, डॉ. राजेन्द्र टोकी
संत कवि मीराँबाई : विवेक भसीन, डॉ. बलदेव वंशी
संत कवि नामदेव : डॉ. हुकुमचन्द राजपाल
संत कवि रैदास : डॉ. भगवती प्रसाद निदारिया
युगद्रष्टा स्वामी विवेकानन्द : डॉ. राजेन्द्र टोकी
अहिंसा का आकाश :
भगवान् महावीर : वीरेन गोहिल
सूफ़ी संत साईं बुल्लेशाह : डॉ. ओमप्रकाश सारस्वत
संत कवि गुरु गोबिन्दसिंह : सुरजीत सिंह जोबन
सूफ़ी संत बाबा फ़रीद : डॉ. उमा शशि दुर्गा
सूफ़ी संत अमीर खुसरो : डॉ. परमानन्द पांचाल
सूफ़ी संत मलिक
मुहम्मद जायसी : डॉ. सुशीलकुमार फुल्ल
संतों के संत कवि रामानंद : डॉ. उदय प्रताप सिंह
संतशिरोमणि दयानंद सरस्वती : डॉ. बद्रीप्रसाद पंचोली
युगपुरुष संत बाबा लाल : डॉ. मीनाक्षी मोहन

समन्वयक :

डॉ. बलदेव वंशी

संत कवि मीराँबाई

(जीवन और वाणी)

विवेक भसीन
डॉ. बलदेव वंशी

इंद्रप्रस्थ इंटरनेशनल

स्वर्गीय जन्मदात्री
श्रीमती सुशीला रानी की
स्मृति को

विश्व संत संस्कृति का महत्तम अवदान

आग लगी आकाश में, झर-झर परे अंगार।
संत न होते जगत में, जल जाता संसार।।—कबीर

त्रिकालदर्शी कबीर ने अतीत के साथ अपने समकालीन जीवन तथा भावी विश्व के लिए भविष्यवाणी भी कर दी, जो आज सत्य सिद्ध हो रही है। विनाश के कगार पर खड़ी मानव जाति को केवल और केवल संत ही बचा सकते हैं। भारतीय संतों ने, भक्त कवियों से आगे और पृथक्, जिस अध्यात्म संस्कृति की व्यापक भूमि तैयार की, उस पर समूची मानवीय संवेदना का एक वृहद् मंच स्थापित है। किसी भी धर्म, ग्रन्थ, संप्रदाय, जाति, वंश, भूगोल आदि से निरपेक्ष मानवीय संवेदना का, संवेद्य ज्ञान का या स्व-संवेद का अध्यात्म-सूत्र हमें थमाया, जो वेद-विहित चेतना (स्वानुभूत संवेदनात्मकता) सार्वभौम, सार्वकालिक, अविभाज्य मानव की धरोहर है। हजारों वर्षों के संतों के श्रम, निष्ठा, चिंता तथा चिंतन का दार्शनिक दाय आज मानव के काम आ सकता है। बुद्ध, महावीर, ईसा आदि के वे वचन जो समूची मानव जाति और मानवीयता को पुनः उबार सकते हैं, उन्हें 'विश्व संतमाला' के अंतर्गत प्रकाशित करने का महत् दायित्व प्रकाशक अशोक शर्मा ने अपने ऊपर लिया है।

भौतिक वैश्वीकरण से आज शांति, समानता, समृद्धि की अपेक्षा घोर अशांति, अत्यधिक असमानता एवं अविकसित देशों में भुखमरी, बेरोजगारी एवं बेजारी बढ़ी है तो धर्म के नाम पर सभ्यता-संघर्ष के रक्तिम मुहाने पर विश्व आ खड़ा, दिन-रात सहमा हुआ काँप रहा है। इस स्थिति से मुक्ति केवल संत दिला सकते हैं। अतः आज विश्व को धर्म की तथा मात्र एकतरफा भौतिक, असंतुलित, अंधस्वार्थ-लिप्त नीतिमत्ता की नहीं; अध्यात्म की सम, संवेदना, समता, स्नेहपूरित सहृदयता की जरूरत है।

अतः अपनी तरह की विशिष्ट, विरल, प्रथम 'विश्व संतमाला' आप सबको समर्पित!

—डॉ. बलदेव वंशी
(लेखक एवं समन्वयक : विश्व संतमाला)
(अध्यक्ष : विश्व कबीरपंथी महासभा)
(चेयरमैन : संत साहित्य अकादमी)

संपर्क : बी-684, सेक्टर-49,
सैनिक कॉलोनी, फरीदाबाद,
पिन. 121001 (हरियाणा)

भूमिका

संत मीराँबाई ऐसी क्रांतिधर्मा नारी हुई हैं, जिन्होंने उपलब्ध राजसी ठाठ-बाट को, ऐश और आराम के जीवन को, सुख-सुविधा की सभी वस्तुओं को ही नहीं रानी होने के सम्मान तक को ठोकर मारकर अपने लिए दुख, कष्ट, अपमान और भौतिक परेशानियों को स्वीकार कर लिया। यह सब हुआ उसके भीतर जाग उठी आध्यात्मिक अस्मिता की उत्कट भावना के कारण। बचपन से भगवान् कृष्ण को अपना पति स्वीकार कर चुकी मीराँ ने कृष्ण को अपना स्वात्म-समर्पण करके अमरता का वरण कर लिया। उपनिषदों का कथन है कि ब्रह्म को (श्रीकृष्ण भगवान् को) साधक सर्वस्व समर्पित करने के उपरांत स्वयं स्वतः ही ब्रह्मरूप हो जाता है। मीराँबाई के साथ भी यही घटित हुआ। तब उनकी वाणी में भी वेद-वाक्य जैसी दिव्यता गंगा-सी अवतरित हुई जिसने मृत-अपमानित आत्माओं को अमृतपान कराकर सजीव कर दिया। राजघराने को त्यागकर लोकघराने को स्वीकार कर स्वयं भी निर्भय हो गयीं तथा युग-युग की दमित-उत्पीड़ित नारी को भी कृष्ण थमाकर निर्भय आनंद की संजीवनी पिला दी। मंदिरों और श्रेष्ठिजनों की कैद से मुक्त कराकर कृष्ण को शूद्र, दलित, उपेक्षित, पीड़ित की अधिकार-सीमा में पहुँचा दिया। मंदिरों से शूद्रों-नारियों के घरों-मनों तक की इस कृष्ण-यात्रा की महानायिका, क्रांतिकारी महानारी मीराँ विश्व साहित्य में अपना अद्वितीय स्थान रखती हैं। विश्व मानव समाज और संत परंपरा की महान आदर्श हैं मीराँ।

मीराँबाई को, उनके जीवन को, संघर्षों को आज मानवीय नई दृष्टि से देखना होगा। उन्हें अपने जैसा, संघर्षों-स्थितियों से घिरा हुआ देखकर ही—मानकर ही हम अपने वर्तमान में सार्थक प्रेरणाएँ पा सकते हैं। ये

प्रेरणाएँ भक्ति रस में मात्र डूबकर अचेत होने की नहीं, बल्कि अपनी 'अहं ब्रह्मास्मि' की चेतना से भरकर सजग-जाग्रत होने की हैं। प्रकृति शक्ति-स्वरूपा है। ईश्वरीय गुण-सम्पन्ना है। जगत की जननी है। लोक में व्याप्त तथा लोक-चेतना की वाहिका भी है। लोक सम्पूर्णतः चैतन्य है। लोक-चेतना की प्रवाहिका है। मीराँ भी इस प्रकृति-संसृति से आत्मसात होकर आंतरिकता की, आध्यात्मिकता की पावन सलिला सरीखी हो गई हैं। वह स्वयं तो अपनी आंतरिकता-आत्मसत्ता के प्रति जाग्रत होती हैं—अपने ईश्वरीय तत्व को उद्‌बुद्ध करती हैं, जगाती हैं, साथ ही मानो लोक को भी उद्‌बुद्ध कर रही, जगा रही हैं—

जागो मोरे, जागो बंसी वाले ललना
जागो मोरे प्यारे।

माया-निद्रा, भौतिक जीवन की मृत्तिकाधर्मी नींद से जागने का आह्वान कर रही मीराँ, वास्तव में युग की जड़ता को तोड़ने की प्रेरणा दे रही हैं। संबोधित कर रही हैं। पूरा जगत सोया पड़ा है। वह ब्रह्मकृत है। परमात्मतत्व से आपूरित होकर भी माया-निद्रा में विलीन है। इसी से सारे भौतिक दुख, कलेश, संकट हैं। इसके प्रति चैतन्य जागृति ही मुक्ति का द्वार है। मीराँ अपनी बेसुध-ध्यानी अवस्था में उसी कृष्ण को टेर रही हैं, जो जगत में व्याप्त है। ऐतरेय ब्राह्मण में चार युगों को बोध-स्तरों पर ही देखा-जाना गया है—

कलि शयनो भवति संजिहानस्तु द्वापरः।
उत्तिष्ठंस्त्रेता भवति कृतं संपद्यते चरन।।
चरैवेति। चरैवेति।

इसके अनुसार कलयुग का अर्थ है सोये होना। जाग जाना द्वापर है। उठ खड़े होना त्रेता है और चल देना सतयुग (कृतयुग) है। अतः सदैव चलते रहना चाहिए। सृष्टि के साथ मनुष्य का सरोकार-संबंध बड़े सटीक रूप में हम तक आया है। संतों ने इसी आत्म-जागृति को अपनी वाणी में गाया है। मीराँ का भी यही आशय-अभिप्राय है।

अध्यात्म की अवधारणा मात्र धार्मिक या सीमित, वायवीय, निरपेक्ष, रहस्यमयी, काल्पनिक अवधारणा नहीं है, अपितु अधि-आत्म—आत्म के आधीन जीवन की, व्यापक-विराट, यथार्थ, सापेक्ष सत्य की पर्याय है।

यही अध्यात्म विद्या मोक्षदायी भी है। अतः मीराँ के भी सारे आग्रह, अन्य संतों की भाँति विद्या—आत्मज्ञान, अध्यात्म-ज्ञान-प्राप्ति के हैं। और मीराँ की अध्यात्म-चेतना लोक की आलोक-चेतना को जाग्रत करने में, सभी विभेदों को—जाति-पाँति, ऊँच-नीच आदि को—समाप्त करने को प्रेरित करती है। वह हमारी लोकतांत्रिक जनोन्मुखी सजगता को पुष्ट-सबल बना सकने की प्रेरणाओं को देने वाली है। हमारे वर्तमान युग की हिंसा-हत्या को, वस्तुवादिता, भौतिकता को नष्ट करके वर्तमान मानव को एक सच्चा मानवीय परिवेश रचने की क्षमता भी उपलब्ध कराती है संत मीराँ की वाणी। इसी में मानव की शांति, सुख-समृद्धि, विकास की दिव्य प्रेरणा समाहित है।

—बलदेव वंशी

अनुक्रम

जन्म और शैशव

भारत एक धर्मप्राण राष्ट्र है। हमारी महान परंपरा में सामाजिक व्यवस्था, साहित्य, संस्कृति, आचार-विचार, नीतियाँ, कर्म व व्यवहार सभी मूलतः धर्म से ही पल्लवित होते रहे हैं। विक्रम की चौदहवीं से सत्रहवीं शती तक का संपूर्ण भारतीय साहित्य मूलतः भक्तिभाव से प्रेरित धर्म-साधना साहित्य है, जो उस युग की देशव्यापी सांस्कृतिक चेतना के पुनर्जागरण का द्योतक है। इस धर्म-साधना साहित्य की सबसे बड़ी विशेषता है कि इसके रचयिता व प्रणेता उच्च कोटि के भावुक संत और भक्त थे, अतः उनकी वाणी 'स्वान्तः सुखाय' होते हुए भी 'बहुजन हिताय : बहुजन सुखाय' है। इस प्रकार हम पाते हैं कि उनकी रचनाएँ चिरन्तन सत्य के आत्मानुभूत प्रमाणवचन हैं।

मीराँ का आविर्भाव इसी भक्ति युग में हुआ। राजस्थान की धरती भक्ति रस, वीर रस व श्रृंगार रस की त्रिवेगी रही है। यहीं पर मातृभूमि पर अपना सर्वस्व न्यौछावर कर देने वाले वीर हुए हैं और यहीं पर संतों व भक्तों की अमृतमयी वाणी भी निःसृत हुई है।

क्षत्रियों के प्रसिद्ध छत्तीस वंशों में से एक राठौड़ वंश अपने अद्भुत शौर्य व पराक्रम के लिए प्रसिद्ध रहा है। इसी वंश के शौर्य व पराक्रम की प्रशस्ति में निन्न पंक्तियाँ कही गयीं—

बल हट बंका देवड़ा, किरतब बंका गोड़।
हाड़ा बंका गाढ़ में, रण बंका राठौड़।।

इस राठौड़ या राष्ट्रकूट वंश की राजस्थान में जोधपुर शाखा के आदिपुरुष राव सीहाजी थे, जो कन्नौज के नरेश जयचन्द के पौत्र थे। इन्हीं की वंश परंपरा में राव जोधाजी हुए, जिनके नाम पर वर्तमान जोधपुर का

नामकरण हुआ। राठौड़ वंश की ही शाखा मेड़तिया के प्रवर्तक राव दूदाजी इन्हीं राव जोधाजी के चौथे पुत्र थे।

राव दूदाजी ने मालवे के मुसलमान नरेश सुलतान महमूद खिलजी पर आक्रमण किया और उसके अधिकार क्षेत्र से मेड़ता तथा आसपास के लगभग 350 गाँवों पर अपना प्रभुत्व जमाया। यहीं से मेड़तिया शाखा का आरम्भ हुआ।

राव दूदाजी मीराँ के दादा थे। दूदाजी को दो रानियों से पाँच पुत्र व एक पुत्री प्राप्त हुए। इन्हीं के चौथे पुत्र रतनसिंह की पुत्री थीं—मीराँ। मीराँ की माता का नाम था—वीरकुँवरि।

मीराँ की जन्मतिथि के विषय में मतभेद हैं। किंतु विभिन्न स्रोतों से प्राप्त सामग्री के विश्लेषण एवं तिथि-गणना आदि साक्ष्यों से प्राप्त जानकारी के अनुसार यह तिथि अनुमानतः संवत् 1555 थी। अनेक विद्वान मीराँ की जन्मतिथि श्रावण सुदी 1, शुक्रवार, संवत् 1561 मानते हैं। मीराँ का जन्म मेड़ता परगने के बाजोली ग्राम में हुआ था। किंतु यहाँ भी कुछ विद्वान जन्मस्थान कुड़की नामक ग्राम मानते हैं।

राव दूदाजी परम धर्मात्मा व भगवान् चतुर्भुज के उपासक थे। संभवतः इन्हीं से मीराँ को भगवद्प्रेम के संस्कार विरासत में मिले। मीराँ के बालपन की एक-दो घटनाएँ बताती हैं कि बालपन से ही वे कृष्ण-भक्ति की ओर प्रेरित थीं। एक बार की बात है, गाँव में एक बारात का आगमन हुआ। बारात में सजे-सँवरे दूल्हे को देखकर मीराँ ने सहज ही माँ से पूछ लिया कि माँ, मेरा वर कौन है? तब बालिका के इस अप्रत्याशित सवाल पर माँ ने हँसकर उसे गिरधर गोपाल की मूर्ति की ओर इशारा करते हुए कहा कि यही तेरे वर हैं। कहते हैं तभी से मीराँ ने कृष्ण को अपना वर मान लिया था। ऐसी ही एक और घटना है। एक बार एक साधु का साक्षात्कार होने पर बालिका मीराँ ने उनसे श्रीकृष्ण की एक सुन्दर मूर्ति प्राप्त की। उस सुन्दर, सुघड़ मूर्ति को प्राणवान मानकर मीराँ को उससे अनुराग हो गया और वही उसके आराध्य बन गये। कृष्ण-प्रेम का यही अंकुर आगे चलकर महान रचनाओं का उत्प्रेरक बना। मीराँ के एक पद से स्पष्ट है—

माई री म्हाँने सुपने में परण गया गोपाल।
राती पीरी चूनर पहरी, मँहदी पान रसाल।।

काँई कराँ और संग भँवर, म्हाँने जग जंजाल।
मीराँ प्रभु गिरधर न लाल सूँ, करी सगाई हाल।।

मीराँ के स्वप्न में श्रीकृष्ण स्वयं आये और उन्होंने उनसे विवाह किया। उनके जन्म-जन्म के साथी कृष्ण छप्पन करोड़ बारातियों के संग दूल्हा बनकर आये, सपने में ही तोरण बँधे, सपने में ही पाणिग्रहण-संस्कार हुआ और सपने में ही मीराँ 'अमरवधू' बन गयीं। अपने प्रिय पर आकर्षित मीराँ ने तन, मन, जीवन—सर्वस्व न्यौछावर कर दिया।

बालपन में ही मीराँ की माता वीरकुँवरि का स्वर्गवास हुआ। पिता रतनसिंह प्रायः युद्धरत रहा करते थे। अतः पितामह राव दूदाजी ने उन्हें उनके जन्मस्थान कुड़की से मेड़ता बुलवा लिया और अपने पास अपने संरक्षण में रखा। मीराँ की प्रारंभिक शिक्षा-दीक्षा यहीं दादा के पास मेड़ता में हुई। दूदाजी परम वैष्णव थे। उनके प्रभाव से मीराँ के मन पर भक्ति के संस्कारों की गहरी छाया पड़ी। संगीत, नृत्य और धर्मग्रन्थों में भी मीराँ की अच्छी गति थी।

विवाह

मात्र तेरह वर्ष की आयु में मीराँ का विवाह मेवाड़ के प्रख्यात वीर राणा सांगा के पुत्र भोजराज से हुआ। संवत् 1573 में संपन्न हुए इस भव्य विवाह समारोह में सैकड़ों घोड़े, ऊँट, रथ सहित प्रचुर मात्रा में धन आदि द्रव्य दहेज स्वरूप दिया गया। मीराँ के साथ ही उनके विद्यागुरु गदाधरजी भी उनके ससुराल चित्तौड़ गये, जिन्हें वहाँ की एक बड़ी जागीर प्रदान की गयी थी। इन्हीं के वंशज 'गजाधरे' कहलाये। दहेज के सामान के साथ ही मीराँ श्रीकृष्ण की अपनी मूर्ति भी ससुराल साथ ले गयीं।

मीराँ के विवाह के बारे में भी इतिहास में अनेक भ्रांतियाँ व्याप्त हैं। राजस्थान के एक प्रसिद्ध इतिहासकार कर्नल जेम्स टॉड का अनुकरण करते हुए कई इतिहासकारों ने मीराँ का विवाह राणा कुम्भा से हुआ माना है। परंतु अनेक साक्ष्यों और प्रमाणों के आधार पर यह निराधार मत एक भ्रांति के अलावा कुछ भी प्रतीत नहीं होता। अनेक साहित्यिक उल्लेखों और ऐतिहासिक शोध-अध्ययनों से यह प्रमाणित होता है कि मीराँ का विवाह भोजराज से ही हुआ था।

संत हरिदास के एक पद से भी यही स्थापित होता है—

एक राणी गढ़ चित्तौड़ की।
मेड़तणी निज भगति कु भावै,
भोजराइजी का जोड़ा जी।।

इसी प्रकार रामदास लालकृत 'भीम प्रकाश' नाम की एक हस्तलिखित पोथी, जो कि संवत् 1856 में लिखी गयी, के विवरण से भी यही प्रमाणित होता है—

भोजराज जेठो अमंग कुँवर पदे मृत गीध।
मेड़तणी मीराँ महल, प्रेमी भगत प्रसीध।।

इस प्रकार के अनेक साक्ष्यों से यह तो स्पष्ट है कि मीराँ का विवाह राणा भोजराज से हुआ। किंतु क्या भोजराज राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र थे, अथवा नहीं, इस बारे में भी कुछ भ्रांतियाँ हैं। राजस्थान के ही एक प्रख्यात पुरातत्वविद् रायबहादुर गौरीशंकर हीराचन्द ओझा के अनुसार भोजराज राणा सांगा के द्वितीय पुत्र थे।

मीराँ के एक पद में आये विवरण से यह स्पष्ट होता है कि उनके जेठ रतनसिंह थे। यही रतनसिंह राणा सांगा के ज्येष्ठ पुत्र थे।

मीराँ के जीवनकाल में मेवाड़ के सिंहासन पर तीन राजा विराजमान हुए। ये थे—राणा सांगा जो कि संवत् 1566 से 1584 तक सिंहासन पर रहे। इसके बाद राणा रतनसिंह का राज्यकाल है जो कि संवत् 1585 से 1588 तक नरेश रहे। तीसरे स्थान पर राणा विक्रमादित्य का नाम आता है जो संवत् 1588 से लेकर 1593 तक सिंहासन पर रहे।

राणा सांगा के जीवनकाल में मीराँ के पिता राव रतनसिंह स्वयं और काका वीरमदेव व चचेरे भाई जयमल जीवित थे। राव रतनसिंह राणा सांगा के मित्र व सहयोगी थे। वे कन्हवा के भीषण युद्ध में राणा सांगा की ओर से बाबर की सेना से लड़ते हुए वीरगति को प्राप्त हुए।

राणा सांगा और उनके बाद राणा रतनसिंह ने मीराँ पर सदैव प्रेमभाव रखा। किंतु रतनसिंह के बाद राणा विक्रमादित्य ने मीराँ को अनेक कष्ट दिये। राणा विक्रमादित्य को एक 20 वर्ष का अनुभवहीन और छिछोरा नरेश माना जाता है। मीराँ की भक्ति और उनके पास साधु-संतों का आना उसको नागवार गुजरा और उसने मीराँ पर कई पाबंदियाँ लगा दीं और अनेक

अत्याचार किये। उसने मीराँ का संतों के पास आना-जाना मना कर दिया। इन्हीं विक्रमादित्य के बारे में मीराँ ने लिखा है–

साँवरियो रंग राचाँ राणा साँवरियो रंग राचाँ।
ताड़ पखावजाँ मिरदंग बाजाँ साधाँ आगे णाचाँ।।
बूझ्या माणे मदण बावरी, श्यामप्रीत म्हाँ काँचा।

इन्हीं राणा विक्रमादित्य के बारे में उल्लेख करते हुए मीराँ ने कहा–

राणा भेज्या विखड़ो प्याड़ा, चरणामृत पी जाणा।
काड़ा णाग पिटार्‌याँ भेज्या, शाड़गराम पिछाणा।।

राणा ने विखड़ो अर्थात् विष का प्याला भेजा जिसे चरणामृत मानकर पी गयी। काला नाग पिटारे में भेजा जिसे मैंने शालिग्राम माना।

इन्हीं विक्रमादित्य ने राणा रतनसिंह की हत्या की और शासक बन बैठे। कहा जाता है कि वे संवत् 1588 में एक षड्यंत्र के शिकार हो गये, जब वे स्वयं जंगल में शिकार खेल रहे थे। मीराँ ने उल्लेख किया है–

मूरख जण सिंगासण राजाँ, पंडित फिरता द्वाराँ।
मीराँ रे प्रभु गिरधर नागर, राणा भगत सिंधारा।।

इन पंक्तियों में "मूरख जण सिंगासण" से तात्पर्य मूर्ख राणा विक्रमादित्य का सिंहासन पर काबिज होना और "राणा भगत सिंधारा" से तात्पर्य राणा रतनसिंह की हत्या है।

नामकरण और भ्रांतियाँ

मीराँ के नामकरण को लेकर विभिन्न विद्वानों में मतभेद रहे हैं। एक विद्वान श्री नरोत्तमदास स्वामी ने तो यहाँ तक स्थापित कर दिया कि मीराँ का वास्तविक नाम दरअसल 'बीराँ' है। वस्तुतः राजस्थानी में बीराँ नाम भाईवाचक है। इसी क्रम में श्री ललिताप्रसाद शुक्लजी ने कहा है कि मीराँ नाम की व्युत्पत्ति 'मेड़ता' शब्द से हुई। वस्तुतः मेड़ता राजवंश की होने के नाते वहाँ की स्त्रियों को 'मेड़तणी' कहा जाता था। परंतु 'मेड़तणी' 'मीराँ' कैसे हो गया, इसका रहस्य समझ से परे है।

ऐसी ही एक स्थापना पंडित के. का. शास्त्री ने भी की है। इनके अनुसार मीराँ नाम दरअसल 'मिहिर' शब्द से बना।

डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल के मत के अनुसार मीराँ शब्द फारसी शब्द 'मीर' से आया। उनके मतानुसार यह नाम किसी मुसलमान संत द्वारा मीराँ को दिया गया हो सकता है।

परंतु सर्वाधिक तर्कसंगत स्पष्टीकरण पुरोहित हरिनारायण का ही लगता है जिनके अनुसार मीराँ नाम अजमेर शरीफ के सिद्ध मीराँ शाह की मनौती के फलस्वरूप उत्पन्न होने के कारण मीराँ को मिला।

इसी संदर्भ में यह भी धारणा है कि मीराँ का मूल जन्मनाम 'पेमल' था।

वैधव्य

मीराँ का वैवाहिक जीवन लंबे समय तक नहीं रह सका। विवाहोपरांत करीब 4 वर्ष के बाद संवत् 1583 के आसपास ससुर राणा सांगा के जीवित रहते ही उसके पति भोजराज की मृत्यु हुई। इससे मीराँ का लौकिक जीवन

अधिक कष्टप्रद हो गया। उसके मन-मस्तिष्क में व्याप्त कृष्ण-भक्ति के संस्कारों को अब पल्लवित होने का सुअवसर मिला। मीराँ का सांसारिक सौभाग्य—उसका सुहाग तो खंडित हुआ किंतु कृष्ण-भक्ति का अखण्ड सौभाग्य अब सदैव के लिए उसके जीवन में व्याप गया। मीराँ की समस्त जीवन-वृत्तियाँ बहिर्मुखी से अन्तर्मुखी होती चली गयीं। समस्त सांसारिक राग-द्वेषों से मुक्त होकर वह एकमात्र अपने आराध्य श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन हो गयीं। मीराँ के किसी भी पद में पति की मृत्यु के कारण-जनित शोक के उद्गार नहीं मिलते। उनका लौकिक वियोग कृष्ण-विरह-व्यथा बनकर ही उनके रचे पदों में दिखाई पड़ता है। यही कारण है कि कुछ विद्वानों ने तो यहाँ तक स्थापित कर डाला कि वस्तुतः मीराँ विधवा थी ही नहीं। ऐसा अद्भुत मत प्रकट करने वालों में श्रीमती पद्मावती शबनम एवं श्री दुर्गादत्त गोस्वामी थे।

इस संदर्भ में यह पद देखना उचित होगा जो कि स्वयं मीराँ द्वारा रचित है—

गिरधर गास्याँ, सती न होस्याँ
मन मोह्यो धन नामी।

मीराँ के द्वारा सती न होने की बात उनके पति की मृत्यु के बाद ही कही जा सकती है, पहले नहीं।

मीराँ के ससुर राणा सांगा धर्मनिष्ठ व उदार हृदय थे। वे पुत्री की भाँति मीराँ से स्नेह रखते थे। उनके जीवित रहते मीराँ को कोई कष्ट-क्लेश छू भी न पाया। उनकी मृत्यु के उपरांत उनके ज्येष्ठ पुत्र राणा रतनसिंह सिंहासन पर आरूढ़ हुए। राणा रतनसिंह का मातृकुल की तरफ से मीराँ से निकट संबंध था। राणा रतनसिंह भी अपने पिता के समान वीरोचित गुण तथा सौहार्द्र से परिपूर्ण थे। परंतु भाग्य की विडम्बना थी कि वे भी अल्पकाल तक ही मेवाड़-नरेश रह सके। एक षड्यंत्र के शिकार होकर इन्होंने भी देह त्याग दी। उनकी मृत्यु के बाद विक्रमादित्य मेवाड़ का राजा बना जो कि क्रूर, अहंकारी, मूर्ख व छिछोरा व्यक्ति था। उसके दुराचरण की वजह से मेवाड़ के सामन्त भी रुष्ट हो चुके थे। कम वय में ही राजसिंहासन व असीमित अधिकार मिल जाने से वह और भी निरंकुश बन गया।

मीराँ की कृष्ण-भक्ति और उनका संतों से मेल-जोल उसे नागवार

गुजरा। उसके मुँहलगे दरबारियों ने भी उसके कान भरे।

मीराँ के जीवन के असंख्य साक्ष्यों, प्राचीन संतों-भक्तों के उल्लेखों और इतिहासकारों द्वारा यह स्थापित होता है कि वह संतों-साधुओं को पूज्य मानती थीं। साधुओं की संगति में मीराँ को 'हरिसुख' की प्राप्ति होती थी। ऐसे में वह सांसारिक दुख-कष्ट तथा क्लेशों को भूल जाया करती थीं।

अपवादस्वरूप कहा जा सकता है कि संसार में हर साधु और संत भी सच्चरित्र व योगी नहीं होते। उस युग में भी ऐसा सत्य देखने को मिलता था। मीराँ को जानने वाले सारे साधु उनकी भावना पहचान पाये हों, यह भी संभव नहीं लगता। ऐसे ही किन्हीं असाधुओं ने जब मीराँ के कहे पद—'साँवरियो म्हारो छाय रह्या परदेस' को बिगाड़कर, विकृत करके 'जोगियो म्हारो छाय रह्या परदेस' गाया अथवा 'साँवरी सुरत मण रे बसी' को विकृत करके 'जोगियो री सुरत मण में बसी' कहकर गाया होगा, तो इससे स्वाभाविक है कि मीराँ बदनाम भी हुई होंगी। इस तरह की बातें राणा तक भी पहुँचीं।

राजवंश की मर्यादा के विपरीत साधु-संतों से निर्बाध मिलना, उनके समागम में भाव-विह्वल होकर प्रभु-प्रेम में निमग्न होकर नाचना, सुध-बुध खो बैठना आदि राणा को बहुत बुरा लगा।

ऐसे में राणा ने मीराँ का प्राणांत कराना ही श्रेयस्कर समझा। उसने मीराँ को पीने के लिए एक प्याले में विष भेजा जिसे मीराँ ने प्रभु का चरणामृत मानकर पी लिया। कहते हैं विष का उन पर कुछ प्रभाव न पड़ा। ऐसी ही एक दूसरी घटना में उसने मीराँ के पास एक विषधर नाग पिटारे में बंद कर भेजा। जब मीराँ ने पिटारा खोला तो उसमें से शालिग्राम प्रकट हुए। मुंशी देवीप्रसाद ने मीराँ को विष लाकर देने वाले व्यक्ति का नाम बीजावर्गी वैश्य तथा बाबू ब्रजरत्नदास ने 'दयाराम पंडा' बताया है।

भक्तों की महिमा को मंडित करने के उद्देश्य से ही अनेक जगह पर हम पाते हैं कि उनकी कथा में अनेक घटनाएँ, चमत्कारी घटनाएँ जोड़ दी जाती हैं। ऐसे ही अनेक व्याख्याकारों व वृतांतकारों के लेखों में हम पाते हैं कि राणा ने मीराँ को बिच्छू, व्याघ्र, शूलों की सेज, भूतमहल में निवास आदि कई कष्ट दिये ताकि उनका प्राणांत हो जाये। किंतु मीराँ

का फिर भी कुछ न बिगड़ा।

ऐसे अतिशयोक्तिपूर्ण विवरणों को छोड़ भी दिया जाये तो भी यह निर्विवाद स्थापित है कि राणा ने मीराँ को विष का प्याला और नाग भेजा था। आधुनिक दृष्टिकोण से देखा जाय तो भी माना जा सकता है कि मीराँ को घातक विष और नागदंश से किसी हितचिंतक द्वारा उपाय करके बचा लिया गया होगा।

राणा विक्रमादित्य की अयोग्यता, अहंकार, कुशासन व्यवस्था और मेवाड़ के सामन्त वर्ग में फैली उसके प्रति उदासीनता ने तत्कालीन गुजरात के शासक बहादुरशाह को प्रेरित किया और उसने मेवाड़ पर आक्रमण कर दिया। संवत् 1589 में इस आक्रमण के बाद सुलह हुई परंतु संवत् 1591 में बहादुरशाह ने चित्तौड़ पर फिर से आक्रमण कर दिया। इस आक्रमण के बाद मुगलों से अपने सतीत्व के रक्षार्थ चित्तौड़ की 12000 से अधिक महिलाओं ने जौहर अपनाया। इससे पहले ही संवत् 1590 में राणा के दुर्व्यवहार से कुपित व संत्रस्त मीराँ ने मेवाड़ त्याग दिया था। वह मेवाड़ से तीर्थाटन के उद्देश्य से मेड़ता चली गयीं। चाचा वीरमदेव और चचेरे भाई जयमल के पास वे सुखपूर्वक कुछ समय तक रहीं।

संवत् 1595 में जोधपुर-नरेश ने मेड़ता पर भयंकर आक्रमण किया और वीरमदेव से मेड़ता छीन लिया। इसके बाद संवत् 1595 में मेड़ता से वृंदावन को चली गयीं। वृंदावन के बाद मीराँ द्वारिका में भी गयीं। मीराँबाई के पदों में ही उनकी दो अंतरंग सखियों के भी नाम आते हैं। ये थीं—चम्पा या चमेली और ललिता। ये दोनों मेवाड़ से लेकर मीराँ के साथ द्वारिका तक गयी थीं।

वृंदावन यात्रा में मीराँ ने कृष्ण के विभिन्न मंदिरों और उनकी अनेक प्रतिमाओं के दर्शन किये। वृंदावन में ही मीराँ की भेंट जीव गोस्वामी और रूप गोस्वामी नाम के विद्वानों से हुई थी। विभिन्न आधारों पर विभिन्न विद्वानों ने मीराँ के गुरु के रूप में जीव गोस्वामी, चैतन्य महाप्रभु, रैदास, रघुनाथ गोस्वामी, बीठलदास, हरिदास और गजाधर पुरोहित आदि के नाम लिए हैं। वस्तुतः मीराँ संप्रदाय-मुक्त, गुरु-शिष्य-परंपराविहीन, सर्वथा स्वतंत्र संत थीं।

विभिन्न ग्रंथों में मीराँ की अकबर और तानसेन से भेंट का उल्लेख

मिलता है। ऐसे ही कुछ पद इस प्रकार हैं—

रूप की निकाई भूप अकबर भाई हिये,
लिये संग तानसेन, देखिबो को आयो है।
निरखि निहाल भयो, छबि गिरधारी लाल,
पद सुख जाल एक तब ही चढ़ायो है।।

और—

भूप अकबर रूप सुन्यौ अति तानहिसेन लीये चलि आयौ।
हेदि कुस्याल भयौ छबि लालहि, एक सबद बनाई सुनायौ।।

परंतु कुछ विद्वानों के अनुसार मीराँ की मृत्यु के समय अकबर मात्र 4 वर्ष का था और मीराँ के देहावसान के भी 16 वर्ष बाद अकबर और तानसेन मिले थे। अतः अकबर-तानसेन और मीराँ का मिलना काल्पनिक मात्र है।

संवत् 1595 में महाराणा उदयसिंह चित्तौड़ की गद्दी पर बैठे और संवत् 1597 तक उन्होंने अपने सारे पैतृक राज्य पर पुनः कब्जा कायम कर लिया। संवत् 1600 में जयमल ने भी पुनः मेड़ता पर अधिकार कर लिया। तब मीराँ के पितृकुल और ससुर-कुल दोनों की ओर से मीराँ को वापिस बुलाने के प्रयत्न हुए। परंतु जब मीराँ इसके लिए राजी न हुईं तो मेड़ता व चित्तौड़ के ब्राह्मणों ने हठपूर्वक उनको लौटा लाने के लिए धरना दिया।

ब्राह्मणों के रोष से बचने का मीराँ के पास कोई उपाय न था किंतु वे वापिस चित्तौड़ या मेड़ता भी जाना नहीं चाहती थीं। तब मीराँ की मनोस्थिति भाँपकर मीराँ की अंतरंग सहेली ललिता ने उनसे अपने मन की बात कही। उसने उन्हें प्रणाम किया और समुद्र में जाकर देह त्याग दी।

मीराँ स्वयं क्षत्राणी थीं। उन्होंने न ब्राह्मणों को नाराज करना उचित समझा और न ही वापिस चित्तौड़ या मेड़ता जाकर पुनः सांसारिक बंधनों में बँधना। कहते हैं उन्होंने कृष्ण की भक्ति में स्वयं को पूरी तरह से डुबो दिया। कृष्ण की भक्ति मन में बसाये मीराँ ने आँखें खोले हुए ही देह त्याग दी। समय, परिस्थिति एवं ऐतिहासिक प्रमाणों के आधार पर मीराँ की मृत्यु-तिथि संवत् 1603 मानी जाती है।

मीराँ की रचनाएँ

मीराँ द्वारा रचित साहित्य के बारे में भी अनेक विवाद उपस्थित हैं। मुंशी देवीप्रसाद, जिन्होंने मीराँबाई की जीवनी लिखी है, ने मीराँ की चार रचनाओं का उल्लेख किया है–

1. गीत गोविन्द की टीका
2. नरसीजी माहरा
3. फुटकर पद
4. राग सोरठ पद संग्रह

दुर्भाग्यवश इनमें से एक भी अब उपलब्ध नहीं है।

संभवतः राणा कुंभा द्वारा रचित 'गीत गोविन्द की टीका' को ही मीराँ द्वारा रचित मान लिया गया होगा।

'नरसीजी माहरा' के कुछ अंश विभिन्न ग्रंथों में प्रकाशित हुए हैं किंतु भाव, भाषा या शैली किसी भी दृष्टि से यह मीराँ की कृति नहीं प्रतीत होती। यह संभव है कि किसी और की रचना मीराँ के नाम पर प्रचारित कर दी गयी। 'फुटकर पद' में मीराँ के अलावा नानक व कबीर सहित दस संतों के पद संगृहीत हैं। अतः यह संग्रह है न कि मीराँ की मूल कृति।

'राग सोरठ पद संग्रह' भी एक संग्रह है, मूल कृति नहीं। इसमें भी विभिन्न कवियों के पद संकलित हैं।

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ने मीराँ की एक रचना 'राग गोविन्द' बताई है। इसमें मीराँ के गेय पद संकलित हैं। आचार्य परशुराम चतुर्वेदी ने ओझाजी के मतानुसार 'मीराँबाई का मलार' व श्री के. एम. जवेरी के अनुसार 'गर्वागीत' नाम के दो ग्रन्थों को मीराँ की रचनाएँ माना है। किंतु इनमें से एक भी ग्रन्थ मूल रूप से प्राप्य नहीं है।

मीराँ ने अपनी सारी रचनाएँ अपनी मातृभाषा राजस्थानी में ही लिखीं। गुजराती में जो मीराँ के पद कहे जाते हैं वे मीराँ के मूल पदों, जो कि राजस्थानी में हैं, से सर्वथा भिन्न हैं। भाषा, शैली और कथ्य की घोर असमानताएँ हैं। वे मीराँ की रचनाएँ नहीं कही जा सकतीं। इसी प्रकार विविध भाषाओं, संप्रदायों और रागों में जो पद मीराँ के नाम से उपलब्ध कहे जाते हैं, वे भी मीराँ की मूल वाणी नहीं अपितु बाद में अनेक लोगों द्वारा रचित हैं और मीराँ के द्वारा रचित कहे जाते हैं।

मीराँ के प्रामाणिक पद डाकोर और काशी की हस्तलिखित प्रतियों में आज भी प्राप्य हैं। राजस्थान में जोधपुर-नरेश के 'पुस्तक प्रकाश', उम्मेद भवन जोधपुर, पुरातत्व मन्दिर जोधपुर, रामद्वारा, धोली बावड़ी, उदयपुर आदि हस्तलिखित संग्रहों में जो 'गुटके' विद्यमान हैं, उनमें संकलित पद मौखिक गेय परंपरा में प्रचलित मीराँ के नाम से कुछ ऐसे पद हैं जो गायकों की स्मृति मात्र के आधार पर लिखे गये हैं। ये रचनाएँ वस्तुतः मीराँ की नहीं अपितु मीराँ के मनोभाव से प्रेरित अन्य साधु-संतों और लेखकों की हैं।

मीराँ का व्यक्तित्व

मीराँ के रूप में हमें एक ऐसी मनस्विनी नारी के दर्शन होते हैं जो विपत्ति में धीर, संपत्ति में उदार, भक्ति में गंभीर रहकर, सांसारिक मोह-माया से निर्लिप्त रहकर जीवन जी गयी। एक ऐसी स्त्री जो कि पारिवारिक क्लेशों, नियति के प्रहारों और सामाजिक प्रताड़नाओं द्वारा उपेक्षित रहकर, सब-कुछ सहकर भी सुख-दुख समान भाव से सहती है, जीती है। जो श्रद्धा, निष्ठा और प्राणघाती विरोधियों के बीच रहकर भी विश्वासपूर्वक अपने आराध्य श्रीकृष्ण की भक्ति में लीन रहते हुए जीवन यापन करती है।

मीराँ के जीवन पर एक दृष्टि डालने से यह सत्य प्रतीत होता है कि मीराँ कृष्ण की संगिनी थीं, भक्त थीं, और उनकी परिणीता दासी थीं। श्रीकृष्ण से जो उनका स्वप्न में विवाह हुआ था, वह उनका दैहिक, सांसारिक नहीं अपितु आध्यात्मिक विवाह था, जोकि उनके समकालीन लोग समझ न सके।

मीराँ वस्तुतः विद्रोहिणी नारी थीं। कृष्ण-प्रेम, कृष्ण-भक्ति के हितार्थ मीराँ ने लोकलाज, राजकुल की मर्यादा, सामाजिक बंधनों को कच्चे धागे के समान तोड़ डाला और कृष्ण के सम्मुख किसी और का आश्रय स्वीकार नहीं किया। कृष्ण की भक्ति में लीन, सुध-बुध खोकर, मगन होकर वह मृदंग ताल पर जी भरके नृत्य करती थीं। मीराँ भौतिक जीवन और सांसारिक मोहपाश से भली-भाँति परिचित थीं, यही कारण है कि वह अविनाशी अपने आराध्य की खोज में निकल पड़ीं और कभी पीछे मुड़कर न देखा।

मीराँ का जीवन आत्मोत्सर्ग और समर्पण की पराकाष्ठा था। एक वीरांगना की भाँति मीराँ ने राजवंशों के विलास को ठोकर मारी, कुल-मर्यादा की अपने वृहद् लक्ष्य के सामने कुछ कीमत न समझी, जीवन के संघर्षों का स्वागत किया और भक्ति मार्ग पर चलते हुए समय-समय पर पड़ने

वाले संकटों और परीक्षाओं को हँसते-हँसते पार किया।

मीराँ के पदों में प्रेम और विरह की अनूठी अनुभूतियाँ पिरोई हुई हैं। ये प्रत्येक व्यक्ति को अपनी स्वयं की पीड़ा और वेदना का अहसास कराती हैं। निम्न पंक्तियाँ देखें—

हेरी मैं तो प्रेम दिवानी,
मेरो दरद न जाने कोय।।
सूली ऊपर सेज हमारी,
सोवण किस विध होय।।
गगनमण्डल पर सेज पिया की,
किस विध मिलणा होय।।
घायल की गति घायल जाने,
या जिन लाई होय।।
दरद की मारी बन-बन डोलूँ,
बैद मिल्या नहिं कोय।।
मीराँ के प्रभु पीर मिटेगी,
जद बैद साँवलिया होय।।

मीराँ कहती हैं कि मैं तो कृष्ण की दीवानी हो गयी हूँ। मेरी वेदना की थाह कोई नहीं पा सकता। विरह की विकट दशा में मेरी सेज भी मुझे काँटों की सूली के समान पीड़ादायक और मृत्यु समान लगती है। मुझे भला फिर नींद कैसे आ सकती है। दूसरी ओर मेरे प्रियतम की सेज तो गगन-मण्डल पर है। वहाँ जाना मेरे लिए संभव नहीं। इस दशा में मुझे जो मर्मान्तक घाव मिला है उसे कोई मेरे जैसा ही समझ सकता है। वही समझ सकता है जिसकी प्रीत प्रभु से लगी हो। मैं विरह-वेदना की मारी बावरी बनी जगह-जगह भटक रही हूँ। मुझे मेरा उपचार करने के लिए कोई वैद्य नहीं मिलता। मीराँ स्वयं ही उत्तर देती हैं कि मेरी इस पीड़ा का शमन तभी संभव है जब स्वयं श्रीकृष्ण, साँवलिया प्रभु ही वैद्य बनकर मेरा उपचार करें।

एक अन्य पद में मीराँ कहती हैं कि यदि मुझे पता होता कि प्रेम करने पर ऐसा दुःसह दुख-कष्ट होता है तो मैं मुनादी करवाकर सबको चेता देती—

जो मैं ऐसा जाणती रे कि प्रीत किये दुख होय,
नगर ढिंढोरा फेरती रे प्रीत करो मत कोय।

तत्कालीन परिस्थितियाँ

राजस्थान में जिस काल में मीराँ हुई थीं, उस काल में उत्तरी भारत में मुख्यतः तीन प्रकार की विचारधाराएँ वेग के साथ प्रवाहित थीं। पहली धारा—ज्ञानयोग की धारा का लक्ष्य चित्तवृत्तियों का निरोध कर परम तत्व का ज्ञान प्राप्त कर उसके साथ अद्वैतवाद का परम अनुभव करना था। दूसरी अर्थात् प्रेमानुबंध की धारा का चरम लक्ष्य परमात्मा के साथ नैसर्गिक आत्मीयता का भाव उत्पन्न कर उससे एकात्म विकसित करना था। तीसरी धारा थी—भक्तिधारा, जिसका ध्येय परमात्मा के प्रति पूर्ण समर्पण-भाव व अगाध श्रद्धाभाव जाग्रत करके उसके सान्निध्य का लाभ उठाना था। हिन्दी साहित्य के विकास में भी विशेषकर प्रारंभिक काल में हमें इन तीनों ही धाराओं का हस्तक्षेप स्पष्ट दिखाई देता है।

भक्तिधारा या भक्तिभाव का प्रारम्भ वास्तव में भारतवर्ष में सबसे पहले उत्तरी क्षेत्रों में हुआ। बाद में परिस्थितियों के कुछ प्रतिकूल होते चले जाने पर, जैसे मुगलों का आक्रमण और उत्तरी भारत पर आधिपत्य होने पर, कुछ समय के लिए दक्षिण भारतीय आचार्य और आलवारों के यहाँ उसे आश्रय लेना पड़ा था। विक्रम की चौदहवीं सदी के लगभग वह पहले-पहल वहाँ से और भी प्रबल रूप धारण करके अपने मूल यानी उत्तरी भारत की तरफ लौट आयी। हिन्दी के प्रारम्भिक दोहों व पदों में हमें धर्म व नीति की कुछ मात्रा अवश्य दिखाई देती है। ऐसी विचारधारा के पदचिह्न सर्वप्रथम नामदेव के पदों में मिलते हैं और उसके बाद कबीर, नानक, रैदास आदि के साहित्य में।

कालान्तर में रामानन्द व महाप्रभु वल्लभाचार्य द्वारा रचित साहित्य में भी हमें भक्तिधारा के ही दर्शन होते हैं। उनके बाद इसी कड़ी में मीराँ

का नाम अग्रगण्य है। बंगाल में चैतन्य महाप्रभु व नरसी भक्त भी इसी श्रेणी में आते हैं। समस्त उत्तरी भारत में सर्वत्र एक ही प्रकार का वातावरण उत्पन्न हो जाने से भक्तिभाव की लहरों में एक वृहद् शक्ति का संचार हुआ और फलस्वरूप सूरदास, हितहरिवंश, गदाधर भट्ट आदि महान भक्त-कवि अपनी ब्रजभाषा की रचनाओं के साथ प्रस्तुत हुए।

मीराँ के आविर्भाव के समय दिल्ली में लोदी वंश के मुसलमान शासक सिंहासनारूढ़ थे। तत्पश्चात् बाबर ने आक्रमण किया और मुगल वंश की नींव डाली। परंतु फिर भी चारों तरफ से लगातार आक्रमण होते रहने पर भी राजस्थान में मुगलों का शासन स्थापित न हो पाया था। उत्तरी भारत में मीराँ के जीवनकाल में ही नानक ने अपने मत का प्रचार किया। पूर्वी भारत में बंगाल क्षेत्र में उसी काल में चैतन्य महाप्रभु ने अपनी भक्ति का प्रचार किया। मध्य भारत में ब्रजमण्डल में महाप्रभु वल्लभाचार्य ने भी अपने पुष्टिमार्ग का प्रचार किया। इसी कालखण्ड में अनेक सूफी कवियों ने भी इसी भक्तिमार्ग के साहित्य में अपना योगदान दिया।

मीराँ के गुरु

मीराँ के गुरु कौन थे? वह किसी संप्रदाय-विशेष से संबंधित थीं या नहीं? उनके विषय में ऐसे प्रश्न भी अक्सर उठते रहे हैं। इस प्रसंग में संत रैदास, संत विट्ठलनाथ, गोस्वामी तुलसीदास, संत जीव गोस्वामी आदि के नाम लिए जाते हैं। श्री जे. एन. फर्कुहर, डॉ. नरोत्तम स्वामी, पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल आदि विद्वान संत रैदास को मीराँ का गुरु स्वीकार करते हैं। मीराँ के अनेक पदों में रैदास या रविदास का उल्लेख स्पष्ट मिलता है—

1. मेरा मन लागो हरि जी सूँ,
अब न रहूँगी अटकी।
गुरू मिल्या रैदास जी,
दीन्ही ज्ञान की गुटकी।।

2. राणा जी रे दूदा जी नी बाई मीराँ बोलिये रे।
संतों नो अपरापुर बास, बीजा नरक भी खाणा रे।।
झाँझ पखावज वेणु बाजुआँ झालर नो झलकार।
काशी नगर या चोक माँ मने गुरू मिलाया रैदास।।

3. मीराँ ने गोविन्द मिलाया जी गुरू मिलाय रविदास।

श्री परशुराम चतुर्वेदी के अनुसार मीराँ और संत रविदास में कालिक बाधा है। यहाँ उल्लिखित रैदास कोई संत कवि नहीं थे। वे तो रैदास संप्रदाय के कोई अन्य व्यक्ति थे क्योंकि काल-गणना और स्थान-विशेष के कारण मीराँ संत रैदास की शिष्या नहीं हो सकतीं।

संत रैदास का जन्म संवत् 1455 से 1475 के आसपास माना जाता है, जबकि मीराँ का जन्म 16वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध का माना गया है। संत रैदास की मृत्यु के समय मीराँ की अवस्था अधिक से अधिक 16-18

वर्ष तक ही हो सकती है। उस समय तक कुँवर भोजराज भी जीवित थे। अतः सं. 1575 से पहले तक मीराँ का काशी के चौक में संत रैदास को गुरु के रूप में प्राप्त करना असंभव प्रतीत होता है। यही कारण है कि कुछेक विद्वानों ने मीराँ के पदों में व्यक्त 'रैदास' को व्यक्तिवाचक संज्ञा न मानकर जातिवाचक संज्ञा माना है। इसी आधार पर इन विद्वानों ने संत विट्ठलनाथ को मीराँ का गुरु माना है। संत विट्ठलनाथ रैदास संप्रदाय के प्रमुख भक्तों में से एक हैं।

जबकि कुछ अन्य विद्वानों के मतानुसार मीराँ के जीवन के पहले 34 या 42 वर्षों तक उनके समकालीन रहे संत रविदास की कृपा द्वारा ही मीराँ को अपने आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति हो सकी थी।

आचार्य परशुराम चतुर्वेदी के मतानुसार मीराँ के गुरु रैदास संप्रदाय के 'विट्ठल' हैं। ज्ञातव्य है कि मीराँ के पदों में 'विट्ठल' शब्द का प्रचुर प्रयोग किया गया है। परंतु 'विट्ठल' का प्रयोग वास्तव में मीराँ ने श्रीकृष्ण के लिए किया है। महाराष्ट्र में कृष्ण के लिए 'विट्ठल' शब्द का ही प्रयोग किया जाता है। महाराष्ट्र से ही इस शब्द का प्रयोग गुजराती भाषा में भी आया।

श्री नरसिंह मेहता ने भी मीराँ के पदों में श्रीकृष्ण के लिए 'विट्ठल' शब्द का ही प्रयोग मान्य किया है। तथापि ये मत स्पष्टतः गलत हैं।

श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र ने संत रैदास को ही मीराँ का गुरु माना है। उनके कथनानुसार—"इतिहास के अनुसार भले ही मीराँ और संत रैदास का मिलन संभव नहीं लगता, लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि संत रैदास मीराँ के गुरु नहीं हो सकते। बहुत संभव है कि उन्होंने मीराँ को 'स्वप्न दीक्षा' प्रदान की हो। संत रैदास के धार्मिक अनुष्ठान और उनके मत से प्रभावित होकर मीराँ ने उन्हें अपना गुरु मान लिया हो सकता है।"

कुछेक अन्य विद्वानों ने चैतन्य संप्रदाय के भक्त जीव गोस्वामी को मीराँ का गुरु माना है। वास्तव में सुपुष्ट प्रमाणों के अभाव में यह कहना संभव नहीं होगा कि मीराँ के आध्यात्मिक गुरु वास्तव में कौन थे।

वास्तव में मीराँ एक भावुक भक्त एवं अपने आराध्य श्रीकृष्ण को पूर्णतः समर्पित प्रेमिका थीं। वह किसी भी भक्ति-संप्रदाय की अनुयायी नहीं थीं। उन्होंने कभी किसी गुरु से विधिवत् दीक्षा नहीं ग्रहण की। मीराँ

के ही कथनानुसार—

हेरी म्हाँ दरद दिवानी म्हारो दरद ना जाणे कोय।
घायल की गति घायल जाणै हिबडी अगण संजोय।
जौहर की गति जौहरि जाणै, क्या जाण्याँ जिण खोय।
दरद की मार्‌याँ दर-दर डोल्याँ, बैद मिल्या नहिं कोय।
मीराँ रे प्रभु पीर मिटे जब बैद साँवलिया होय।

इन पंक्तियों से यह स्पष्ट है कि मीराँ ने आध्यात्मिक साधना में जीव व ब्रह्म के एकाकार स्वरूप के लिए किसी गुरु का आश्रय ग्रहण नहीं किया, बल्कि उनके लिए तो श्रीकृष्ण ही वास्तविक गुरु थे। वे ही उनके वैद्य थे। वह उन्हीं को अपना गुरु, अपना सब-कुछ तथा एकमेव साथी मानती थीं।

कुछ विद्वान गोस्वामी तुलसीदास को मीराँ का गुरु मानते हैं। यह तथ्य प्रसिद्ध है कि अपने संकटकाल में मीराँ ने तुलसीदास से पथ-प्रदर्शन माँगा था। मीराँ ने तुलसीदास को यह पत्र लिखकर भेजा—

स्वस्ति श्री तुलसी कुलभूषण,
दूषण हरण गोसांई
बाराहि बार प्रणाम करहुँ,
अब हरहु सोक समुदाई।
घर के स्वजन हमारे जेते,
सबन्ह उपाधि बढ़ाई।
साधु-संग अरू भजन करत मोहि,
देत कलेस महाई।
मेरे मात-पिता के सम हो,
हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है,
सो लिखिये समुझाई।

यही पद कुछ परिवर्तन के साथ 'बेलवेडियर प्रेस' से प्रकाशित पुस्तक 'मीराँ की शब्दावली' में इस प्रकार से है—

श्रीतुलसी सुख निधान, दुख हरन गोसांई।
बारहि-बार प्रणाम करूँ, अब हरो सोक समुदाई।

घर के स्वजन हमारे जेते, सबन उपाधि बढ़ाई।
साधू-संग अरू भजन करत मोहि देत कलेस महाई।
बालपने ते मीराँ कीन्हीं, गिरधर लाल मिलाई।
सो तो अब छूटत नहि क्यों हूँ, लगी लगन बरियाई।
मेरे मात-पिता के सम हौ, हरि भक्तन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबो है, सो लिखिये समुझाई।

मीराँ के इस पत्र के उत्तर में तुलसीदास ने यह पत्र उन्हें आशीर्वाद देते हुए लिखा—

जाके प्रिय न राम वैदेही,
तजिये ताहि कोटि बैरी सम,
जदपि परम सनेही।
तज्यो पिता प्रहलाद,
विभीषण बंधु, भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यो, कंत ब्रज बनिता,
भये सब मंगलकारी।
नातो नेह राम सों मनियत,
सुहृद सुसेव्य जहाँ लौं।
अंजन कहा आँख जो फूटैं,
बहुतक कहौ कहाँ लौं।
तुलसी सो सब भाँति परम हित,
पूज्य प्रान ते प्यारो।
जासों बढ़े सनेह रामपद,
ऐतो मतो हमारो।

यह भी एक मत है कि तुलसीदास ने उक्त पद के साथ एक सवैया भी लिखकर भेजा था—

सो जननी सो पिता सोई भ्रात,
सो भामिन सो सुत सो हित नेरो।
सोई सगो सो सखा सोई सेवक,
सो गुरू सो सुर साहिब चेरो।
सो तुलसी प्रिय प्रान समान,

कहाँ लौं बताई कहौ बहुतेरो।
जो तजि गेह को, देह को नेह,
सनेह सो राम को होय सबेरो।

परंतु यह घटना भी ऐतिहासिक तथ्यों पर खरी नहीं उतरती। इसमें तो संदेह नहीं की उक्त दोनों रचनाएँ तुलसीदासकृत हैं। परंतु यह संदेहास्पद है कि ये रचनाएँ मीराँ के पत्र के उत्तर में ही लिखी गयी थीं। काल-गणना के अनुसार यह बात असंगत प्रतीत होती है। इस पत्र के लिखे जाने का समय लगभग सं. 1590 के आसपास होना चाहिए क्योंकि 1591 वि. में तो मीराँ ने मेवाड़ को छोड़ दिया था। जबकि मीराँ को मेवाड़ में रहते हुए पारिवारिक कलह झेलना पड़ा था।

यह सर्वविदित है कि राणा विक्रमादित्य के अत्याचारों ने मीराँ को मेवाड़ त्यागने को बाध्य कर दिया था। सं. 1591 में मीराँ ने मेवाड़ छोड़ दिया और अपने चाचा तथा भाई जयमल के पास मेड़ता आ गयीं। परंतु शांतिपूर्वक जीवन बिताना फिर भी उनके भाग्य में नहीं था। वीरमदेव युद्ध हार गये और मेड़ता उनसे छिन गया। इस घटना से मीराँ को बहुत गहरा आघात लगा। उनका मन सांसारिक बंधनों से पूरी तरह उचाट हो गया।

कुछ साधु-संतों के साथ उन्होंने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की नगरी वृन्दावन में जाकर शरण ली। यहीं पर उन्होंने श्रीकृष्ण की स्तुति में अनेक पदों की रचना की। वृंदावन उस समय तक भक्ति का एक प्रमुख केन्द्र बन चुका था। यहीं पर मीराँ का अनेक अन्य कृष्णभक्त कवियों से मिलना हुआ। इनमें चैतन्य संप्रदाय के मुख्य भक्त जीव गोस्वामी का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। एक जनश्रुति के अनुसार मीराँ ने जीव गोस्वामी से मिलने की इच्छा प्रकट की परंतु जीव गोस्वामी ने उन्हें यह कहलवाया कि वह स्त्रियों से नहीं मिला करते। इस पर मीराँ ने कहा कि—"मुझे तो आज ही पता चला है कि पूर्ण पुरुष श्रीकृष्ण को छोड़कर यहाँ अन्य भी कोई पुरुष निवास करता है।"

आत्य लगी हुँ जाणती व्रज माँ,
श्रीकृष्ण पुरुष वे एक।

यह सुनकर जीव गोस्वामी बहुत लज्जित हुए और स्वयं जाकर मीराँ से भेंट की। इस घटना के बाद मीराँ वृन्दावन छोड़कर द्वारिका चली गयीं।

इस समय तक जयमल देव ने मेड़ता पुनः जीत लिया था। मेवाड़ में महाराणा उदयसिंह राजा बने। मेड़ता और मेवाड़ दोनों ही जगहों से मीराँ को पुनः वापिस आकर बसने का आग्रह किया गया। परंतु मीराँ का मन तो सांसारिक बंधनों से तिक्त हो चुका था। अन्ततः मीराँ वहीं रणछोड़जी के मन्दिर में अपने इष्टदेव की शरण में समा गयीं।

मीराँ की जन्मतिथि के अनुसार उनकी मृत्युतिथि के बारे में भी निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। कुछ विद्वानों के मतानुसार मीराँ का निधन संवत् 1610 से 1616 के मध्य हुआ है। यही मत अधिक तर्कसंगत प्रतीत होता है। मीराँ की मृत्यु के समय कुछ विद्वानों के अनुसार वे गुजरात में थीं।

मीराँ का ही एक पद इस प्रकार से है—

साँडवा का साँड शरगार जे रे,
जाऊँ सौ-सौ रे कोस।
राणा जी राँ देश रे मारे,
जकरे पीवानो दोस।
डाबो मेलयो मेवाड़ रे,
मीराँ गयी पश्चिम माँय।
सरब छोड़ी मीराँ नीसयाँ,
जेनु मायामाँ मनडु न कायँ।

इससे पता चलता है कि अपने जीवन के अन्तिम क्षण मीराँ ने गुजरात में द्वारिका नगरी में ही व्यतीत किये थे। डॉ. धर्मपाल सिंहल के अनुसार—"मनुष्य जीवन का ऐसा कोई पक्ष नहीं, जिस पर मीराँ ने अपनी गहन दृष्टि द्वारा विचार नहीं किया। भारतीय जीवन-मूल्यों के आधार पर तथा संत विचार के अनुसार आदर्श जीवन का संदेश मीराँ की वाणी की विशिष्टता है। महान संत की यह महिमाशाली शिष्या गुरु-कृपा के ही कारण अध्यात्म के उस उच्च शिखर पर पहुँच गयी थी, जो सर्वसाधारण जन को सामान्यतः कम ही उपलब्ध होता है। ऐतिहासिक दृष्टि से एवं परंपरा से वह संत-मार्ग की ही अनुयायी थीं तथा एक परम संत थीं।"

मीराँ के विषय में प्रचलित यह लोकोक्ति अत्यंत सार्थक एवं प्रासंगिक है—

नाम रहोगे काम से, सुनो सयाने लोय।
मीराँ सुत जायो नहीं, शिश न कीनो कोय।।

श्री जगबीरसिंह के अनुसार—"मीराँ एक जिज्ञासु और ज्ञानी भक्तों की कड़ी में गिनी जाती हैं। जिन्होंने लोकलाज, वर्ग-अभिमान, ऊँच-नीच की भावना और कुल-मर्यादा का त्याग करके, केवल परमार्थ-साधन और जीव-मुक्ति की उत्कट जिज्ञासा द्वारा संतशिरोमणि श्री रविदासदास का शिष्यत्व ग्रहण किया। उस समय ईश्वर के अनन्य भक्त और ज्ञान-ध्यान के धनी पारखी संत महापुरुष उनको संत रविदास ही मिले, जिन्होंने अज्ञानी हृदय में ब्रह्मज्ञान का स्रोत प्रवाहित कर दिया।"

अतः यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि कृष्ण-भक्ति काव्य, विशेषतः गीतिकाव्य की परंपरा में महाकवि सूरदास के बाद मीराँ का नाम सर्वोपरि है। महाकवि सूरदास से अलग केवल दांपत्य भावभूमि में कवयित्री मीराँ के समकक्ष कोई भी अन्य व्यक्ति मध्य युग तो क्या, वर्तमान काल में भी दूर-दूर तक नजर नहीं आता। काव्य, भक्ति एवं प्रेम के क्षेत्र में इससे अधिक गरिमा और महिमा भला किसी और की क्या हो सकती है?

मीराँ की भक्ति भावना

मीराँ ने प्रेम और विरह का बहुत ही मानवीय और मार्मिक चित्रण किया है। एक पद में वह कहती हैं कि प्रियतम की मनोहारी छवि मेरे हृदय में गहरे बिंध चुकी है। उसके बिना भी मेरे प्राण नहीं बचने वाले क्योंकि वही मेरे जीवन की रक्षा करने वाले मूल मंत्र हैं। वही तो विरह-ताप को हरने वाली औषध हैं। मीराँ कहती हैं कि मैंने कृष्ण के हाथों प्रेम में अपना सब-कुछ लुटा दिया है। अब मैं बिलकुल विवश हूँ। किंतु लोग कहते हैं कि मैं बिगड़ गयी हूँ। वे कहते हैं कि मैं चरित्रहीन हो गयी हूँ। मेरे नेत्रों को उस प्रियतम की मनोहारी छवि देखते रहने की आदत हो गयी है। उसे देखे बिना मुझे तनिक भी चैन नहीं मिलता, मैं व्यथित रहती हूँ। अतः मेरे प्रिय पति, मेरे मालिक ने मुझे दर्शन दिये हैं। उन्होंने स्वयं मुझे अपनी झलक दिखलाई है—

चित चढ़ी मेरे माधुरी मूरत,
उर विच आन अड़ी।
कैसे प्राण पिया बिन राखूँ,
जीवन मूर जड़ी।
मीराँ प्रभु के हाथ बिकानी,
लोग कहें कि बिगड़ी।
नैना मोरे बान पड़ी,
साँई मोहि दरस दिखाई।

मीराँ अपने प्रेम की गहराई, विरह की तड़प के साथ ही आत्मानन्द का उल्लेख भी करती हैं। वह कहती हैं कि मीराँ दीवानी हो गयी है, पगला गयी है, किंतु मैं क्या करूँ, मेरे पास इसका कोई उत्तर नहीं है। कोई चारा

नहीं है। वह तो देह रूपी मंदिर में ढोलक बजाकर नाद-ब्रह्म में डूबकर राम नाम गाने में ही अपार आनन्द पा रही है। जैसे माटी का मटका टूट जाने पर उसमें भरा पानी बिखर जाता है, उसी प्रकार उसकी (मीराँ की) आत्मा शरीर के मृत्तिकाधर्मी बंधनों से मुक्त होकर भीतर के मण्डलों में पक्षी की भाँति उड़कर पहुँच गयी है। अब यह शरीर उसे व्यर्थ प्रतीत होता है। अब मीराँ अपने सतगुरु के चरणों में पहुँच गयी है। वह तो अब वास्तव में सनाथ होकर रानी बन गयी है। उसकी वाणी सर्वत्र फैल गयी है और गायी जाती है–

मीराँ हो गयी दीवानी, मैं कैसी करूँ रे।
अपने मंदिर में ढोलक बजावे,
ढोलक के नाद में राम नाम गावे।
फूट गया कलसा बिखर गया पाणी,
उड़ गया हंसा ये काया बिरानी।
हाट बंजार में मीराँ की बानी,
सद्गुरु के चरणों में मीराँबाई रानी।

और अंततः इस प्रेम दीवानी मीराँ को उसका प्रियतम मिल ही गया। विरह की पीड़ा का शमन हुआ। इस प्रकार सच्चा ईश्वर-प्रेम भक्ति को सच्चा और मजबूत बनाता है। एक अन्य पद में मीराँ प्रियतम से मिलाप के आनंद का बड़ा ही भावनापूर्ण वर्णन करती हैं। वह कहती हैं कि उनका प्रियतम घर आ गया है। वह रतन आदि बहुमूल्य धन उस पर लुटा और वार देना चाहती हैं। उसकी आरती उतारना चाहती हैं। प्रिय का संदेश मिला। मीराँ उसका अत्यधिक सम्मान करती हैं।

पाँच सखियाँ अर्थात् पंच इन्द्रियाँ मिलकर मानो मंगलगीत गा रही हैं। वह उनके देह-अंगों में समा नहीं पा रहा। हरि रूपी सागर से स्नेह का वार-पार नहीं है। उनकी आत्मा रूपी बूँद परमात्मा रूपी सागर में समाकर स्वयं समुद्र हो गयी है। आज मीराँ के घर-आँगन में दूध की मानो वर्षा हो रही है। उनकी संपूर्ण मनोकामनाएँ आज पूर्ण हो गयी हैं–

सहेलियाँ साजन घर आया हो।
बहोत दिनाँ की जोवती, बिरहिन पिव पाया हो।।
रतन करूँ नेछावरी ले आरती साजूँ हो।

पिव का दिया सनेहड़ा ताहि बहोत निवाजूँ हो।।
पाँच सखी इकठी भई, मिलि मंगल गावै हो।
पिय की रली बधावणा, आनंद अंग न मावै हो।।
हरि सागर सूँ नेहरो, नैणा बंध्या सनेह हो।
मीराँ सखी के आँगणै, दूधाँ बूठा मेह हो।।

इस प्रकार मीराँ अपने प्रियतम गिरधर को प्राप्त करके आनन्द में विभोर होकर नाचती हैं। वह अकेली नहीं, उनकी पाँचों सखियाँ, पाँचों इन्द्रियाँ और आत्मा भी नृत्यरत हैं। मीराँ की आत्म-ज्योति परमात्म-ज्योति में विलीन हो गयी है। जैसे जल की बूँद सागर में विलीन हो जाती है। यह परम आनंद, मुक्ति का पर्व है। मीराँ इस पर्व में आनंदमग्न होकर दीवानों की तरह नृत्यरत हैं।

मीराँ व अन्य कवि-भक्त

मीराँ के काव्य तथा भावना की तुलना उनके समकालीन, पुरातन व आधुनिक कवियों से की जाती रही है। श्री भुवनेश्वरदास माधव लिखते हैं, "जिस किसी कवि से मीराँ की तुलना की गयी, वह वास्तव में मीराँ के दिव्य प्रेम का अनादर करना माना जाना चाहिए। मीराँ का काव्य हृदय की निगूढ़ वेदना से प्रसूत है।

मीराँ विरह की गायिका हैं और इसमें रंचमात्र भी शंका के लिए स्थान नहीं है कि अपने क्षेत्र में, उस क्षेत्र को आज भी आज के समालोचक बहुत ही सीमित या संकुचित क्यों न कहें, मीराँ सर्वश्रेष्ठ हैं।"

कुछेक कवियों के साथ मीराँ की तुलना यहाँ करने का हमने प्रयास किया है।

1. मीराँ और घनानन्द

मीराँ के काव्य में अभिव्यक्त मार्मिक वेदना और प्रेमानुभूति की तुलना घनानन्द से की जाती है। वस्तुतः मीराँ की तुलना हम इस दृष्टि से विरह-कवि घनानन्द से कहीं अधिक उपयुक्त तरीके से कर सकते हैं। विरह-निवेदन की क्रिया में घनानन्द मीराँ से आगे अवश्य बढ़ जाते हैं। घनानन्द के विरह-निवेदन में असमर्थता या निरुपायता प्रेरित आश्रित का एक अनूठा अनुरोध है, जो कि विवशता से भरी हुई मीराँ की बेचैनी से भी अधिक प्रभावशाली बन जाता है। उसके एक-एक शब्द से किसी बैठते हुए हृदय की दयनीय व दर्द भरी आह निकलती जान पड़ती है।

घनानन्द अपने विरह-निवेदन में वास्तव में अद्वितीय जान पड़ते हैं। घनानन्द में कला पक्ष भी मीराँ से अधिक स्पष्ट है और काव्य-कौशल में

भी वे मीराँ से अधिक प्रवीण हैं।

श्री भुवनेश्वरदास मिश्र 'माधव' भी कुछ इसी स्वर में अपना अभिमत प्रकट करते है, "हिन्दी साहित्य में विरह-काव्य के सर्वश्रेष्ठ कवि हुए हैं—घनानन्द। निश्चय ही विश्व साहित्य में घनानन्द के समान विरह-कवि पाना कठिन है। घनानन्द का एक-एक शब्द विरह-वेदना के रस में सराबोर है। उनका कला पक्ष तो मीराँ की अपेक्षा अधिक सुव्यवस्थित है ही, भाव पक्ष भी उनका मीराँ के काव्य से कहीं भी कमतर नहीं।"

वस्तुतः मात्र विरह-वर्णन के आधार पर ही इन दोनों कवियों को एक ही कोटि में नहीं रखा जा सकता। इन दोनों की तुलना करना ही वास्तव में असंगत मालूम पड़ता है। घनानन्द के प्रेम का आलम्बन सर्वथा लौकिक है, जबकि मीराँ के आराध्य लोकोत्तर हैं। फलतः घनानन्द का विरह-वर्णन अत्यंत मार्मिक और हृदयस्पर्शी होने पर भी लौकिक स्थूलता और ऐन्द्रिकता से पूर्णतः मुक्त नहीं रह सका है। इस प्रकार की लौकिकता या ऐन्द्रिकता का मीराँ के काव्य में होने का प्रश्न ही नहीं उठता। यह ठीक है कि घनानन्द की लौकिक रति सुजान की चोट से आहत होकर ईश्वरोन्मुख हो गयी थी, परंतु सुजान के प्रति उनकी आसक्ति कदाचित् उनके मन से पूरी तरह से नहीं जा सकी थी।

घनानन्द के काव्य में लौकिक प्रेम की यह धारा अंतःसलिला के समान स्पष्ट प्रवाहित है। जो विद्वान घनानन्द को भक्ति के रंग में रँगकर उन्हें एकांततः भक्त-कवियों की श्रेणी में ला बैठाने का प्रयास करते हैं, वे वस्तुतः घनानन्द की प्रेमी आत्मा के साथ न्याय नहीं करते।

मीराँ कृष्ण-प्रेम की कवयित्री हैं जबकि घनानन्द लौकिक प्रेम के कवि हैं। मीराँ का विरह एक भक्त-कवयित्री का विरह है जबकि घनानन्द का एक लौकिक प्रेम से आहत प्रेमी का। विरह तो दोनों का ही सर्वोपरि है परंतु परिवेश सर्वथा भिन्न है। घनानन्द ने तो अपनी प्रेमिका को पाया नहीं इसलिए वह उसकी विरह-ज्वाला में दग्ध हुए। जबकि मीराँ तो प्राप्ति नहीं, समर्पण की वह याद है जो अपने आराध्य के चरणों में विसर्जित हो गयी।

2. मीरा और नरसी

नरसी गुजराती भाषा के भक्त-कवि थे एवं मीराँ मूलतः राजस्थानी थीं, फिर भी निश्छल और अगाध भक्ति भावना की दृष्टि से मीराँ और नरसी में पर्याप्त समानता है।

नरसी मीराँ से लगभग 85 वर्ष पहले हुए थे। श्री परशुराम चतुर्वेदी ने अपने द्वारा संपादित पदावली की भूमिका में इन दोनों की ही भक्ति भावना, धार्मिक दिनचर्या एवं जीवन परिस्थितियों का अच्छा तुलनात्मक विवेचन किया है। दोनों को ही अपने रूढ़िग्रस्त समाज से तिरस्कृत होकर नाना प्रकार के कष्ट व यातनायें झेलनी पड़ी थीं। यद्यपि विनय के पदों की दृष्टि से दोनों में कुछ समानता है, परंतु मीराँ का विरह-निवेदन अधिक मार्मिक है। उसमें नारी-सुलभ वियोग-व्यथा की अत्यंत नैसर्गिक व्यंजना हुई है।

डॉ. मजूमदार ने दोनों की तुलना करते हुए ठीक ही लिखा है कि—"नरसी के पदों में कहीं-कहीं प्रभु-भक्ति के साथ तत्व-ज्ञान का निचोड़ भी उतरा है, जैसे—

"ज्याँ लगी आत्मा तत्व चिन्त्यो नहि,
त्याँ लगी सर्व झूठी।"

और—

"अखिल ब्रह्माण्ड माँ एक तुँ श्री हरि।"

वहाँ 'व्याकुल विरहिणी' मीराँ में ज्ञान-चर्चा की अपेक्षा वियोग का स्वर ही अधिक तीव्र है।

प्रेम-चित्रण में जहाँ नरसी मेहता का शृंगार किंचित नग्न और अमर्यादित है, वहीं मीराँ का काव्य संयत और गंभीर है। वस्तुतः मीराँ के काव्य में शृंगार व प्रेम का बड़ा ही ललित-मधुर निखार है।

3. मीराँ और महादेवी वर्मा

वस्तुतः किसी भी कवि के कृतित्व का सम्यक मूल्यांकन उसके जीवनकाल मात्र से नहीं किया जा सकता। उसके लिए एक दूरी, समय का एक निश्चित अंतराल अपेक्षित हुआ करता है। जब हम कचि के व्यक्तित्व से निरपेक्ष होकर, उसके कृतित्व को ही आधार मानकर उसका मूल्यांकन कर सकते हैं।

कवि के जीवनकाल में अनेक पूर्वाग्रहों के कारण, कुछ दृष्टि-दोष आ ही जाते हैं। वस्तुतः मीराँ की तुलना कृतित्य की दृष्टि से महादेवी से करना पूर्णतः उचित भी नहीं जान पड़ता।

कुछेक विद्वानों का मत है कि–"हिन्दी कवियों में मीराँ के निकट आने वाले बस दो-तीन ही नाम लिए जा सकते हैं। ये नाम हैं–जायसी, घनानन्द और महादेवी वर्मा। परंतु प्रायः आलोचक यह नजरअंदाज कर दिया करते हैं कि मीराँ मध्यकाल की एक भक्त कवयित्री हैं और महादेवी आधुनिक काल की। महादेवी विरह की पुजारिन हैं और विरह में ही चिर हैं।"

श्री परशुराम चतुर्वेदी ने इन दोनों की तुलना करते हुए किंचित अधिक स्पष्टता एवं साहस के साथ प्रयास किया है। वे लिखते हैं–"मीराँ की विरवित अथवा 'भगति-रसीली' की अनन्यता कुछ भिन्न क्षेत्रों की बातें हैं जिस विचार से हम यदि चाहें तो महादेवी वर्मा का नाम ले सकते हैं।

दार्शनिक आदर्शों के फेर में पड़ जाने के कारण उनकी कविताओं में क्लिष्टता की कल्पना का अंश अधिक आ जाता है। भावों की न्यूनाधिक अस्पष्टता के कारण उनमें उनके असीमित माधुर्य की सफल अभिव्यक्ति भी नहीं हो पाती है। कल्पना-बाहुल्य उनके काव्य को बहुत भाराक्रान्त-सा बना दिया करता है।"

कवीर ने जैसा अनुभव किया था, उन्होंने ठीक वैसा ही लिखा है जैसे–"तू कहता कागद की लेखी, मैं कहता आँखिन की देखी।" यही बात मीराँ के विषय में भी सत्य है। इस स्थिति में मीराँ और महादेवी वर्मा की तुलना भागवत न होकर कल्पनागत होनी चाहिए। वस्तुतः अनुभूतिमूलक काव्य और एकांत कल्पना प्रसूत काव्य की कैसी तुलना?

मीराँ के अनुभूति एवं अभिव्यक्ति पक्ष के विषय में कोई असंगति नहीं दिखाई देती। उनकी अनुभूति में जितनी सच्चाई है, उतनी ही अभिव्यक्ति में भी। जबकि महादेवी वर्मा की विरह-व्यंजना का स्वरूप न तो लौकिक ही रह सका है और न ही अलौकिक। मीराँ के पद कृष्ण-प्रेम में दीवानी तथा उनके विरह-वियोग में व्याकुल विरहिणी के घायल-व्यथित मन के स्वतः स्फूर्त उद्गार हैं। इसी तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रसिद्ध आलोचक श्री शांतिप्रिय द्विवेदी ने भी स्वीकारा है–"महादेवी के काव्य में अनुभूति तो

है ही, किन्तु उसमें कला पक्ष इतना प्रधान है कि हृदय पक्ष अर्थात् भाव पक्ष अत्यंत अलंकृत हो गया है। यह सहज-सुलभ नहीं रह पाया है।''

उदाहरण के तौर पर महादेवी की रचना की ये पंक्तियाँ देखें—

''जो तुम आ जाते एक बार!
कितनी करुणा, कितने संदेस,
पथ में बिछ जाते बन पराग!
गाता प्राणों का तार-तार,
अनुराग भरा उन्माद राग,
आँसू लेते वे पद पखार।।''

इन पंक्तियों में पाठक को यह स्पष्ट नहीं हो पाता कि 'वे' कौन हैं। जबकि मीराँ के काव्य में स्पष्टतः श्रीकृष्ण ही हैं। यदि यह कहा जाये कि महादेवीजी भी मीराँ की तरह, कबीर के समान ईश्वर को समर्पित हैं और उनका संपूर्ण विरह उन्हीं के प्रति निवेदित है, तो भी उनका काव्य तथा उनका जीवन इस बात का साक्ष्य नहीं देते।

इसके ठीक विपरीत मीराँ के जीवन का तो प्रत्येक क्षण, प्रत्येक श्वास गिरधर गोपाल श्रीकृष्ण के प्रति ही पूर्णतः समर्पित था, इसीलिए उनका जीवन उनके कृतित्व से एकरूप ही गया था। मीराँ के गीतों का विरह उनके प्राणों का ही विरह था, उनके जीवन का विरह था। उन्होंने जो अलौकिक प्रेम की पीड़ा सही, उसे ही अपने पदों में ढाला। उसी पीड़ा, उस दर्द को सहने और उसे कहने का अंतर ही वस्तुतः मीराँ और महादेवी के बीच का अंतर है।

श्री भुवनेश्वरनाथ मिश्र 'माधव' ने भी अपनी मान्यता स्पष्ट करते हुए इस प्रकार कहा है—''महादेवी की वेदना भौतिक है, जबकि मीराँ की आध्यात्मिक। महादेवी में लौकिक दाह है जबकि मीराँ में पारलौकिक कराह। महादेवी का प्रियतम लौकिक ही है, इसमें कोई संदेह नहीं किया जा सकता।

केवल वेदना के आधार पर उन्हें एक कैसे कहा जा सकता है? जब दोनों की प्रेरणाओं के स्रोत भिन्न हैं, दिशा भिन्न है, और भिन्न है अनुभूतियों की विभूति भी।''

ऐसी स्थिति में मीराँ और महादेवी वर्मा में समता का धरातल वस्तुतः

स्पष्ट नहीं हो पाता।

4. मीराँ और सूफी कवि

मीराँ के काव्य की तुलना या समता यदा-कदा कुछेक सूफी कवियों से भी की जाती रही है। यह सत्य है कि मीराँ में सूफी कवियों जैसी प्रेम की तीव्रता या अनन्यता है, परंतु यह कहना कि मीराँ पर सूफियों का प्रभाव है, असंगत और सर्वथा गलत है।

एक विद्वान ने मीराँ के एक-दो पदों में आये प्रासंगिक उल्लेखों के आधार पर उनकी प्रेम-वेदना पर विदेशी छाप देखते हुए निम्न प्रकार से अपना मत प्रकट किया है—"मीराँ ने माधुर्य भाव की उपासना ग्रहण की थी। परंतु बाहरी प्रभाव भी उन पर पड़ा था। सूफियों के प्रभाव से उनकी कविता या भजन, पद प्रभावित हैं या फिर नहीं, इसका विश्लेषण करना हमारा उद्देश्य नहीं परंतु इतना अवश्य कहना पड़ेगा कि उनकी प्रेम की वेदना में विदेशी छाप है अवश्य और कहीं-कहीं उनके पदों में जुगुप्सा वाली विदेशी पद्धति भी मिलती है।

'सूली ऊपर सेज पिया की मिलणों किस विध होय।' से ही इसका पता चलता है। एक और पद इस प्रकार है—

काढ़ि कलेजा मैं धरूँ रे,
कौवा तू ले जाई।
ज्याँ देसाँ म्हारो पीव बसै
वे देखैं तू खाई।"

इन विद्वान महाशय ने कहा है कि कलेजा काढ़कर दिखाने की बात तक तो ठीक है, परंतु कौवे को उसे पिया के सामने खाने को कहना, इसमें जरूर विदेशी छाप है।

यहाँ यह कहना उचित होगा कि मध्यकालीन हिन्दी व राजस्थानी प्रेमाख्यानक काव्यों में प्रेम व विरह की प्रचलित रूढ़ियों का यदा-कदा मुक्त भाव से प्रयोग होता रहा है। उदाहरण के तौर पर ढोला-मारू का यह दोहा देखा जा सकता है—

"कउआ दिऊँ बधाइयाँ,
प्रीतम मेलई मुज्झ।

काढ़ि कलेजऊ आपणऊ,
भोजन दिउँली तुज्झ।''

उक्त दोहे में अपना कलेजा निकालकर कौवे को देने के उल्लेख मात्र से क्या यह कहा जा सकता है कि ढोला-मारू पर भी विदेशी, सूफी प्रभाव है? ये तो विरह-वर्णन के सामान्य उद्‌गार हैं, जिनकी ठेठ भारतीय परंपराएँ हैं।

यदि मलिक मुहम्मद जायसी सहित अन्य सूफी कवियों ने इसका विरह-वर्णन में प्रयोग किया है तो यह सूफी काव्य पर भारतीय प्रभाव है, न कि भारतीय काव्य पर सूफी प्रभाव! फारसी काव्यों में प्रायः बुलबुलों का उल्लेख किया जाता रहा है, कौवों का नहीं।

''ऐ बुलबुले गोहंदा वे ऐ कब्जे खिरामाँ।
मैं खुर कि जे मैं बाद हमेशा परो बालत।''

और एक उदाहरण इस प्रकार है—

''जे हर सू बुलबुले आशिक दर अफगाँ।
तनुम दरमियाँ बादे सब कर्द।''

कलेजा निकालकर कौवे को देने जैसी बात केवल सूफी कवियों ने ही नहीं की थी। ऐसे वर्णन हमारे भारतीय काव्य में भरे पड़े हैं—

''केसुय कलिय ति वाँकुडि,
आँकुडी मयण ची जाणि।
विरहिय ना इणि कालिज,
कालिज काढ़ई ताणि।''

स्पष्टतः सूफी मत का उपजीव्य फारस की रहस्यवादी विचारधारा है, जिसका मीराँ की विशुद्ध भारतीय प्रेम-भावना से कोई साम्य नहीं है।

5. मीराँ और गोदा

गोदा आण्डाल तमिल की प्रसिद्ध वैष्णव भक्त कवयित्री थीं। तमिल साहित्य में इनका वैसा ही स्थान और सम्मान है जैसा कि हिन्दी साहित्य में मीराँ का। दोनों ही जीवनभर कृष्ण-प्रेम में अभिभूत रहीं। मीराँ के समान ही गोदा आण्डाल ने श्रीकृष्ण-मिलनजन्य मनोल्लास और उनकी विरहजन्य वेदना का बहुत ही मार्मिक वर्णन किया है।

गोदा के प्रणय-निवेदन में बहुत कुछ मीराँ जैसी ही भावाकुलता है। मीराँ के समान आण्डाल भी अपने प्रियतम के विरह में वस्त्राभूषण और रत्नादि त्याग देती है। यह सब भाव-साम्य होने पर भी मीराँ और आण्डाल के प्रणय-निवेदन में थोड़ा अंतर है।

यह अंतर दोनों के संस्कारों का है। आण्डाल विषम परिस्थितियों में एक साधु द्वारा पालित हुई थीं और बचपन में ही भगवान् 'रंगनाथ' के प्रति अर्पित हो गयी थीं। अतः जीवन की प्रतिकूल एवं क्रूर प्रताड़नाओं ने उन्हें कहीं-कहीं अधिक साहसी और प्रगल्भ बना दिया है। यही कारण है कि वह अपने प्रेम-निवेदन में कही-कहीं उन्मुक्त प्रेम-वर्णन करने में भी नहीं हिचकिचातीं। उदाहरण के लिए एक स्थान पर वह कहती हैं—

"जिस प्रकार ब्राह्मणों के यज्ञ में देवताओं को लक्ष्य करके अर्पित की जाने वाली हवि को कोई जंगली सियार मुँह मारने लगे, वैसे ही चक्रधर भगवान् को लक्ष्य करके उभरे हुए मेरे उरोजों को यदि मानवों के उपभोग्य बनाने की चर्चा चली, तो हे मन्मथ, मैं जीवित नहीं रहूँगी।"

परंतु अपने राज्योचित शील व संस्कारों के कारण मीराँ अपने प्रणय-निवेदन में इतनी प्रगल्भ नहीं हुईं कि अपने 'उन्नत उरोजों' की बात करें। फिर भी यह कहना अनुचित नहीं होगा कि अन्य भक्त कवि-कवयित्रियों में यदि मीराँ किसी से सर्वाधिक तुलनीय हैं तो वह इस तमिल-कवयित्री आण्डाल से ही, जिसे तमिल की मीराँ कहना अनुचित नहीं होगा।

6. मीराँ और कबीर

यद्यपि कबीर निर्गुणोपासक संत कवि थे। मीराँ सगुणोपासक भक्त कवयित्री थीं। तथापि प्रेम की अनन्यता एवं विरह-व्यंजना की तीव्रता की दृष्टि से दोनों में पर्याप्त साम्य विद्यमान है। दोनों का ही नारी-भाव से अपने इष्ट को विरह-निवेदन है। मीराँ तो अपने इष्ट श्रीकृष्ण की "जनम-जनम की दासी" थीं। कबीर भी स्वयं को राम की 'बहुरिया' मानते थे। फलतः पत्नी-सुलभ विरह की तीव्रता और उत्कटता का दोनों के ही काव्य में अत्यंत मार्मिक चित्रण हुआ है। वस्तुतः मीराँ की-सी निश्छल एवं भाव-प्रवण विरह-व्यंजना कबीर में भी सहज ही दिखाई देती है।

7. मीराँ और चन्द्रसखी

मीराँ के अनेक पद्यांश या पद किंचित रूपांतर के साथ, एक अन्य कवयित्री 'चन्द्रसखी' से मिलते हैं। इसमें संदेह नहीं कि राजस्थान में चन्द्रसखी के भजन, विशेषकर महिलाओं में, मीराँ के पदों के समान ही प्रचलित हैं। यहाँ तक कहा जाता है कि चन्द्रसखी मीराँ से भी अधिक लोकप्रिय हैं।

जिस प्रकार मीराँ के पदों में "मीराँ के प्रभु गिरधर नागर" की छाप मिलती है, वैसे ही चन्द्रसखी के काव्य में—"चन्द्रसखी भज बालकृष्ण छवि" की। इससे स्वतः ही अनुमान किया जा सकता है कि चन्द्रसखी के भी आराध्य श्रीकृष्ण ही थे। मीराँ के पदों के समान ही चन्द्रसखी के पदों में भी उनकी लोकप्रियता एवं मौखिक परंपरा के फलस्वरूप प्रक्षेप का अत्यंत क्लिष्ट समावेश हो गया है। यही कारण है कि उनके मूल पदों को खोज निकालना एक बड़ी समस्या हो गयी है।

विद्वान प्रभुदयाल मित्तल ने चन्द्रसखी के जीवन व कृतित्व पर शोध कर यह लिखा है—"मेरी खोज से यह निश्चय होता है कि चन्द्रसखी कोई स्त्री नहीं, अपितु पुरुष थे। वे विक्रम की अठारहवीं शती के आरंभ में हुए थे।"

यहाँ हम कह सकते हैं कि मीराँ के बाद चूँकि चन्द्रसखी का समय है इसलिए चन्द्रसखी के काव्य पर मीराँ के काव्य की छाप है, न कि चन्द्रसखी के काव्य का मीराँ द्वारा लिया गया प्रभाव।

8. मीराँ और सुभद्राकुमारी चौहान

एक विद्वान श्री परशुराम चतुर्वेदी ने अपने अध्ययन द्वारा मीराँ और सुभद्राकुमारी चौहान में तुलना करते हुए कहा है कि—"मीराँ की तुलना यदि सुभद्राकुमारी चौहान से की जाये तो भावों की सुकुमारता एवं हृदय की तन्मयता की दृष्टि से सुभद्राकुमारी चौहान को हम उनके बहुत निकट पायेंगे। श्रीमती चौहान ने श्रद्धा, वात्सल्य भाव एवं देश-प्रेम संबंधी अनेक सुन्दर कविताएँ लिखी हैं।"

परंतु यह भी तथ्य है कि इन दोनों ही कवयित्रियों में यदि कोई समानता है तो वह है दोनों का स्त्री होना। इसके अतिरिक्त इन दोनों में कोई समानता

नहीं है। मीराँ और सुभद्राकुमारी चौहान की काव्य-चेतना का स्वरूप ही सर्वथा भिन्न है। अतः इन दोनों की तुलना करना असंगत है।

मीराँ के संबंध में मीराँ की जीवनी लेखक एक जर्मन विद्वान श्री हरमन गोएट्ज ने अपना मत इस प्रकार प्रकट किया है–

"A great poetess? No, much more, a saint, a wonderful human being, living in this world, and yet shrouded in the invisible presense of her divine god! We know only of one other personality of whome the same could be stated : Jesus, the christ. If poetry is inspired by the divine, she was the greatest poetess of India during the last millennium, because she was extra ordinary personality, a saint, one of the loftiest and purest of mankind."

मीराँ-पदावली की भाषा का स्वरूप

मीराँ की पदावली की भाषा का स्वरूप हमेशा से ही विवाद का विषय रहा है। हस्तलिखित मूल प्रतियों के अभाव में, केवल गेय परंपरा से प्राप्त पदों के भाषा-वैविध्य को दृष्टिगत करते हुए मीराँ की पदावलियों के भिन्न-भिन्न संकलनकर्त्ताओं, संपादकों, समीक्षकों और शोधकर्त्ताओं ने प्रचलित पदों को ही शुद्ध मानकर मीराँ को अनेक भाषाओं की कवयित्री घोषित कर दिया।

आज तक मीराँ-पदावलियों के प्रायः सभी पद मौखिक परंपरा और संदिग्ध तथा अशुद्ध हस्तलिखित गुटकों से लिए गये हैं। इसका परिणाम यह हुआ कि उनमें भाव और भाषा, भक्ति विषयक धारणा के आधार पर अनेक प्रकार के परिवर्तन होते गये हैं। उदाहरण के तौर पर–

(1) राग कल्पद्रुम : इस ग्रन्थ के पद सर्वथा मौखिक परंपरा से लिए गये हैं अतः इनमें ब्रज और ब्रजमिश्रित राजस्थानी की प्रधानता है।

(2) मीराँबाई के भजन : यह भी एक संकलित ग्रन्थ है।

(3) मीराँबाई की शब्दावली : यह पुस्तक भी इसी प्रकार प्रकाशित की गयी है। इसमें संत-मत से प्रभावित पद बड़ी संख्या में हैं।

श्री नरोत्तमदास स्वामी ने मीराँ के काव्य की भाषा राजस्थानी को माना है। उनके मतानुसार–"मीराँबाई के काव्य की भाषा राजस्थानी है, जो पश्चिमी हिन्दी का एक प्रधान विभाग है। राजस्थानी की उत्पत्ति अपभ्रंश से हुई है और वह अपभ्रंश की सबसे जेठी भाषा है, बेटी है। राजस्थानी, ब्रज और गुजराती का उद्‌गम स्थान एक ही है और तीनों में ही बहुत समानता पायी जाती है।

प्राकृत और अपभ्रंश की अनेक विशेषताएँ इनमें संरक्षित हैं। ब्रजभाषा

और गुजराती का क्रमिक विकास, पृथक् विकास विक्रम की चौदहवीं और पंद्रहवीं शताब्दी में हुआ था। कालान्तर में राजस्थानी के दो रूप हो गये। एक में अपभ्रंश बहुत कुछ मिली रही। इसी को चारण-भाटों ने अपनाया और आगे चलकर यही रूप 'डिंगल' कहलाया।

राजस्थानी का यही रूप, साहित्यिक रूप कुछ दिनों में स्थिर (Steriotyped) हो गया और मृत भाषा बन गया। चारण-भाट इसी रूप में कविता किया करते हैं। 'पृथ्वीराज रासो' डिंगल का ही एक अनुपम उदाहरण है। राजस्थानी का दूसरा रूप जनसाधारण में प्रचलित बोली थी। उसमें भी वस्तुतः साहित्य का अभाव नहीं था। बाद में मीराँ आदि भक्त-कवियों ने इसी रूप को अपनाया और इसी में कविता की। जनसाधारण में बोधगम्य होने के कारण इस भाषा में लिखी हुई रचनाओं का खूब प्रसार भी हुआ।

मीराँबाई की भाषा में वस्तुतः मिश्रण बहुतायत में है। गुजराती भाषा की विशेषताएँ भी अनेक स्थानों, रचनाओं में पाई जाती हैं। पंजाबी, खड़ी बोली, पूरवी आदि का आभास भी कई स्थानों पर मिलता है। उनके अनेक पद शुद्ध गुजराती में भी पाये जाते हैं, परंतु इसमें संदेह है कि वे पद उनके द्वारा ही रचित हैं।"

श्री महावीर सिंह गहलोत का मत है कि—"मीराँ के पदों के रचनाकाल भी भिन्न-भिन्न हैं और देश भी। देश-परिवर्तन के साथ-साथ भाषा भी रूप बदलती रहती है। यह सिद्धांत परिवर्तनशील भी है। जैसे किसी कारण आवेश आ जाये तो कवि अपनी भाषा में ही कविता करेगा। भाषा-फेर के अन्य कारणों में से लिपि और बहिया भी है। बहिया अर्थात् लेखक या रचनाकार। अन्य लिपियों में जाकर कुछ शब्द अपने अर्थ बदल लेते हैं और कुछ लेखकों द्वारा ताल-तुक बनाने के फेर में बदलाव आ जाता है।

हम मीराँ के काव्य की भाषा को 'पिंगल' ही मानते हैं। पिंगल से तात्पर्य ब्रजभाषा के उस रूप से है, जो मध्यकाल में राजस्थान की काव्य भाषा, विशेषकर भक्ति-संबंधी पदों का रहा है।"

साधु-संतों द्वारा भी मीराँ पदावली में भाषा संबंधी अनेक परिवर्तन आते गये हैं। विशेषकर राजस्थानी, गुजराती, ब्रज, पंजाबी, बिहारी, खड़ी बोली के साधु-संतों ने अनेक मिश्रित भाषाओं में मीराँ के पद रचकर उन्हें

जन-समाज में प्रसारित कर दिया।

श्रीमती विष्णुकुमारी मंजु ने लिखा है—''यदि ध्यानपूर्वक देखा जाये तो मीराँ के पदों में अनेक भाषाओं के शब्द मिलेंगे। इसका मुख्य कारण यह है कि मीराँ ने तीर्थाटन और साधु-सत्संग बहुत किया। संत-समुदाय मीराँ के दर्शनार्थ आया करता था जिससे उनके अपने शब्द भी मीराँ के पदों में आ गये। इसके अतिरिक्त मीराँ का संबंध चार विभिन्न प्रदेशों से रहा है—मारवाड़, मेवाड़, गुजरात और ब्रज।

यद्यपि इनकी भाषा राजस्थानी है, फिर भी इसमें ब्रजभाषा के शब्द अधिक प्रयुक्त हुए हैं। गुजराती, फारसी, पंजाबी आदि के शब्द भी अधिकांशतः प्रयुक्त हुए हैं। पूर्वी बिहार आदि की भाषा का प्रभाव भी दिखाई पड़ता है। फिर भी यह कहना पड़ेगा कि मीराँ के काव्य में बहुत-सी भाषाओं का मिश्रण पाये जाने पर भी उनकी कविता की भाषा राजस्थानी है, जो कि पश्चिमी हिन्दी की ही एक प्रधान शाखा है।''

मीराँ-पदावली में गीतिकाव्य के तत्व

तात्विक दृष्टि से मीराँ के पदों में वैयक्तिकता, कल्पनाशीलता, मार्मिकता, संक्षिप्तता, सरलता, सहजता, सरसता, संगीतात्मकता पाई जाती है। उपरोक्त सभी तत्वों के समरस समन्वय के कारण हम कह सकते हैं कि मीराँ के पद गीतिकाव्य का शृंगार हैं।

भारतीय काव्य साधना के इतिहास में गीतिकाव्य के मूल स्रोत वैदिक मंत्रों से जुड़े हैं। वैदिक मंत्रों के सस्वर पठन-पाठन ने उन्हें सुदीर्घ काल तक मौखिक रूप से सुरक्षित रखा है।

नाथों और सिद्धों के चर्यापद, जयदेव का गीत गोविन्द, बीसलदेव रासो, आल्हखण्ड, खुसरो के पद, विद्यापति की पदावली, कबीर आदि निर्गुणपंथी संप्रदाय के संतों के 'शब्द', सूर तथा अष्टछाप के कवियों की रचनाएँ मीरा-पूर्व गीतिकाव्य परंपरा के महत्वपूर्ण उदाहरण हैं।

गीतिकाव्य की पूर्ववर्ती परंपरा में मीराँ का काव्य एक सच्ची भक्त आत्मा की वेदना, व्याकुलता, तल्लीनता, मिलन के उल्लास और विरह के उन्माद को पूर्णतः संयतावस्था में ज्ञापित करता है। उनके विरह प्रधान पदों में उनकी अन्तर्वेदना फूट पड़ी है और वियोग की विकासोन्मुख दशा में इस अन्तर्वेदना का सौंदर्य मीराँ के काव्य का प्राण बनकर ढल गया है।

मीराँ के काव्य में बाह्य तापों की तालाबेली कम और अन्तस की कचोट अधिक है। भावानुरूप स्वरों के उतार-चढ़ाव से मीराँ के पदों में संगीत-तत्व का सहज समन्वय हो गया है। पूर्णतः वैयक्तिक अनुभूतियों के प्रकाशन, मनोवेगों के स्वाभाविक ज्ञापन और आत्मा की निगूढ़ अनुभूतियों के यथातथ्य अभिव्यंजन से मीराँ का काव्य गीतिकाव्य परंपरा में एक पूर्णतः स्वतंत्र और सर्वोच्च स्थान पाने का अधिकारी है।

मीराँ के आराध्य का स्वरूप

मीराँ ने अपने काव्य में जिस आराध्य का उल्लेख किया है उसके स्वरूप को लेकर भी अनेक मतभेद उभरते रहे हैं। कुछ विद्वानों का मत है कि–"मीराँ ने अपने इष्टदेव श्रीकृष्ण की कल्पना पति के रूप में की है।"

"अपने रहस्यमय गीतों में मीराँ ने कृष्ण के लिए भक्ति और प्रेम दर्शाया है। इसी से इनका रहस्यवाद कबीर के रहस्यवाद के समान शुष्क नहीं होने पाया।"

यहाँ पर यह कहना अनुचित न होगा कि मीराँ ने कृष्ण रूप की 'कल्पना' नहीं की थी, उनकी वैसी 'भावना' थी। उनका कृष्ण-प्रेम रहस्यवाद की उन बौद्धिक कल्पनाओं या काल्पनिक अनुभूतियों से मुक्त है जो कि महादेवी वर्मा के काव्य में देखी जा सकती हैं।

अतः मीराँ को रहस्यवादिनी मानना वस्तुतः उनकी सहज, निश्छल प्रेम भावना को एक गलत परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करना है। मीराँ उस रूढ़ अर्थ में कदापि रहस्यवादिनी नहीं थीं, जैसा कि 'रहस्यवादी' शब्द से आज जाना-समझा जाता है।

मीराँ-साहित्य के एक अन्य विद्वान श्रीकृष्ण लाल ने मीराँ के आराध्य में अनेक विरोधी रूपों की उद्भावना कर उनकी उपासना पद्धति को विरोधाभास का एक अच्छा-खासा उदाहरण बनाकर प्रस्तुत किया है। वे लिखते हैं कि–"मीराँ के भगवान् उनके प्रियतम गिरधर नागर हैं, जो कि कितने ही अलग-अलग रूपों में हमारे सामने आते हैं।"

वे आगे लिखते हैं–"उनका पहला स्वरूप निर्गुण ब्रह्म का है, जो कि कबीर, नानक आदि संत कवियों के जैसे निर्गुण, निराकार ब्रह्म के निकट जान पड़ता है। वह दूर ऊँचे महलों में रहने वाला है।

मीराँ के गिरधर नागर का एक दूसरा स्वरूप योगी का है। उस योगी की खोज में मीराँ ने भी योग लिया है।

गिरधर नागर का एक तीसरा स्वरूप सगुण ब्रह्म का है।''

एक अन्य विद्वान श्री हीरालाल माहेश्वरी की मान्यता है–''मीराँ के समस्त व्यक्तित्व और काव्य में नाथपंथी जोगी, सगुण कृष्ण और निर्गुण ब्रह्म से संबंधित अभिव्यक्ति की मिली-जुली त्रिवेणी बह रही है। उनका रोम-रोम इसमें रम-सा गया है। मीराँ की काव्य-वीणा के तीन ही तार हैं– जोगी, कृष्ण और निर्गुण ब्रह्म।''

ऐसे विरोधाभासी उद्‌गारों के फलस्वरूप मीराँ के इष्ट व उनकी उपासना पद्धति के विषय में भ्रांतियाँ फैलना स्वाभाविक ही है। मीराँ पर निर्गुण विचारधारा का प्रभाव देखने वालों में डॉ. पीताम्बरदत्त बड़थ्वाल ही सर्वप्रथम थे जिन्होंने मीराँ के आराध्य तथा उनकी प्रेम भावना पर निम्न अभिमत प्रकट किया–''यद्यपि मीराँ व्यवहारतः सगुणोपासिका थीं और कृष्ण की उपासना 'रणछोड़' के रूप में किया करती थीं। फिर भी यह स्पष्ट है कि उनके कहे जाने वाले पदों में निर्गुण विचारधारा स्पष्ट दिखाई देती है। उन्होंने अपनी प्रेम संबंधी विनय कृष्ण एवं ब्रह्म दोनों के प्रति एक साथ की है।''

इस वक्तव्य के बाद तो हिन्दी साहित्य जगत में यह धारणा अतर्क्य सत्य के रूप में स्थापित हो गयी कि मीराँ सगुणोपासक होने पर भी निर्गुण विचारधारा के प्रति आक्रांत थीं। उनका किसी नागपंथी जोगी से भी संबंध रहा हो सकता है। इसका फल यह हुआ कि मीराँ का नाम एक अन्य पंथ– नागपंथ से भी जोड़ दिया गया। फलस्वरूप मीराँ को सगुण, निर्गुण और नागपंथी विचारधारा की त्रिवेणी में डाल दिया गया।

मीराँ के विषय में स्थापित इस भ्रांति से हिंदी के सामान्य पाठक व आलोचक ही, विद्वान ही प्रभावित हुए हों, ऐसी बात नहीं है। हिन्दी के श्रद्धेय परम विद्वान डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने भी बहुत कुछ इसी मान्यता को दोहराया है। परंतु फिर भी उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि मीराँ का किसी पंथ-विशेष के प्रति आग्रह नहीं था।

डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी का कथन है कि–''मीराँ का संबंध एक तरफ तो सगुणमार्गी भक्तों से सिद्ध होता है और दूसरी ओर उनका निर्गुणमार्गी भक्तों से भी संबंध जोड़ा जाता है।

फिर उनके भजनों में किसी ऐसे गुरु की चर्चा भी आती है, जो कि नागपंथी साधु जान पड़ते हैं। इन सब बातों से एक ही निष्कर्ष निकल सकता है कि मीराँबाई अत्यंत उदार मनोभावापन्न भक्त थीं। उन्हें किसी एक पंथ-विशेष पर आग्रह नहीं था।''

वस्तुतः हम यह भूल जाते हैं कि जहाँ कहीं भी मीराँ ने अपने आराध्य के लिए निर्गुण ब्रह्मवाची उपाधियों का उपयोग किया है वहाँ भी उनके साथ कृष्ण का सगुण स्वरूप अभिन्नतः संश्लिष्ट रहा है। उदाहरणतः उनके पद की पंक्ति—''भज मन चरण कँवल अविनासी'' में हमारी दृष्टि निर्गुण ब्रह्मवाची 'अविनासी' शब्द पर तुरन्त जा पड़ती है, परंतु उसके स्वरूप के व्यंजक 'चरण-कँवल' शब्द पर ध्यान देने का कष्ट हम नहीं करते, जिसके पीछे सगुण कृष्ण की निर्मल छवि ही मुस्कुराती है।

अतः 'जोगी' शब्द को लेकर मीराँ का किसी नाथपंथी जोगी या नाथ संप्रदाय से संबंध जोड़ना निरर्थक जान पड़ता है। स्वयं मीराँ के पदों से यह स्पष्ट हो जाता है कि उनका 'जोगी' या 'जोगियाँ' कोई अन्य नहीं, अपितु स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण हैं। उनका प्रियतम और कोई अन्य न होकर स्वयं श्रीकृष्ण ही हैं। उन्हीं की सूरत व स्मृति उनके मन में, चित्त में बसी हुई है।

निष्कर्ष यह निकलता है कि मीराँ का किसी जोगी या नाथ संप्रदाय से संबंध या प्रभावित होने की बात सर्वथा निरर्थक व भ्रांत है। जहाँ तक निर्गुणोपासना का प्रश्न है, इस संबंध में यह विचारणीय है कि ईश्वर के सगुण स्वरूप में जहाँ उसका निर्गुण रूप भी समाहित रहता है, वहीं निर्गुण में सगुण रूप नहीं। यही कारण है कि हमारे सगुण भक्त कवियों ने अपने आराध्य के गुणगान के अंतर्गत उसके विशुद्ध निर्गुण रूप का भी उसी मुक्त भाव से स्तवन किया है। परंतु एकांगी निर्गुणोपासना में सगुण के लिए कोई स्थान नहीं है।

ऐसी स्थिति में अपने आराध्य श्रीकृष्ण के अनन्त गुणों में डूबी मीराँ ने यदि उनके व्यापक स्वरूप के बोध के लिए यत्र-तत्र निर्गुण ब्रह्मवाची प्रयोग कर भी दिये तो इससे उनकी मूल सगुणोपासना पर कोई आँच नहीं आती। यह तो सभी भक्त कवियों की प्रचलित परिपाटी रही है।

महाकवि तुलसीदास ने भी अपने आराध्य सगुण दाशरथी 'राम' के

लिए निर्गुणवाची विशेषणों का प्रयोग किया है। उन्होंने तो राम को पूर्णतः निर्गुण से एकरूप करके भी दिखलाया है–

सोई सच्चिदानन्द घन रामा।
अज बिग्यान रूप बल धामा।।
व्यापक, व्याप्य, अखंड, अनंता।
अखिल, अमोघ सक्ति भगवंता।।

परंतु इस उदाहरण के आधार पर किसी भी विद्वान ने तुलसीदास को निर्गुण राम का आराधक मानने की गलती नहीं की। फिर मीराँ के विषय में ही यह वितंडा क्यों?

राजस्थानी भक्ति परंपरा के महान कवि 'ईसरदास' भी मूलतः सगुणोपासक ही थे। परंतु उन्होंने ईश्वर के सगुण रूप-वर्णन के साथ-साथ उनके व्यापक निर्गुण परब्रह्म स्वरूप का भी उतना ही भावमय वर्णन किया है–

1. नमो रण रांमण मारण राम।
नमो किय सिद्ध बभीखण कांम।।
नमो कन्ह रूप निकन्दन कंस।
नमो ब्रजराज नमो जदुवंस।।

2. अनंत पराक्रम तुझ अनन्त।
नहीं तुझ आद, नहीं तुझ अंत।।
नहीं तुव रूप, नहीं तुझ रेख।
नहीं तुव वप्प, नहीं तुझ वेस।।

इन उदाहरणों से यह स्वतः स्पष्ट हो जाना चाहिए कि भक्त के मानस में प्रवाहित सगुण और निर्गुण भक्ति की दो विभिन्न व समानान्तर धाराएँ समझना एक भ्रम-मात्र है। वस्तुतः यह तो सगुण का ही एक विराट रूप-दर्शन है। भक्तों का निर्गुण-निराकार आराध्य सगुण-साकार भी है।

मीराँ-पदावली

प्रथम खंड

स्तुति-वंदना

राग तिलंग

मन रे परसि हरि के चरण।।टेक।।
सुभग सीतल कँवल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरण।
जिण चरण प्रहलाद परसे, इंद्र पदवी धरण।
जिण चरण ध्रुव अटल कीने, राखि अपनी सरणि।
जिण चरण ब्रह्मांड मेट्यो, नखसिखाँ सिरी धरण।
जिण चरण प्रभु परसि लीने, तरी गोतम घरण।
जिण चरण कालीनाग नाथ्यो, गोपलीला करण।
जिण चरण गोबरधन धार्‌यो, इन्द्र को ग्रव हरण।
दासि मीराँ लाल गिरधर, अगम तारण तरण।।1।।

(परसि : स्पर्श कर, वंदना करके, कँवल : कमल, त्रिविध ज्वाला : तीन प्रकार के भौतिक ताप, जिण : जिन, धरण : धारण की, प्राप्त की, अटल कीने : अचल ध्रुवलोक में स्थापित किया, मेट्यो : व्याप्त किया, नखसिखाँ : नख से शिख तक, सर्वांग, सिरी धरण : श्री या शोभा धारण करने वाले, परसि लीने : स्पर्श कर लेने मात्र से, गोतम घरण : ऋषि गौतम की पत्नी अहिल्या, नाथ्यो : वश में किया, ग्रव : गर्व, घमण्ड, अगम : अगम्य।)

राग ललित

हमरो प्रणाम बाँके बिहारी को।।टेक।।
मोर मुगुट माथे तिलक विराजै, कुंडल अलकाकारी को।
अधर मधुर पर वंशी बजावै, रीझ रिझावै राधाप्यारी को।
यह छबि देख मगन भई मीराँ, मोहन गिरवरधारी को।।2।।

(बाँके बिहारी : श्रीकृष्ण, मोर मुगुट : मोर के पंख का मुकुट, कुण्डल अलकाकारी को : कुण्डल और काली लट धारण करने वाले श्रीकृष्ण, रीझ रिझावै राधा प्यारी को : स्वयं रीझकर प्रेमिका राधा को भी रिझाने वाले कृष्ण।)

विनय

राग हमीर

बसो मेरे नैनन में नंदलाल।।टेक।।
मोहनी मूरति साँवरी सूरति, नैणाँ बने विसाल।
अधर सुधारस मुरली राजति, उर बैजंति माल।
छुद्र घंटिका कटि तट सोभित, नूपुर सबद रसाल।
मीराँ प्रभु संतन सुखदाई, भक्त वछल गोपाल।।3।।

(बसो : छाये रहो, सूरति : स्वरूप, बने : शोभायमान हैं, सुधारस : अमृत जैसा माधुर्य प्रदान करने वाली, राजति : शोभित है, बैजंति माल : वैजयन्ती नाम की माला, छुद्र घंटिका : घुँघरूदार करधनी, कटि तट : कमर में, सबद : शब्द, रसाल : मधुर।)

हरि मोरे जीवन प्रान अधार।।टेक।।
और आसिरो नाहीं तुम बिन, तीनूँ लोक मँझार।
आप बिना मोहि कछु न सुहावै, निरखौ सब संसार।
मीराँ कहै मैं दास राव री, दीज्यौ मती बिसार।।4।।

(और : अन्य, दूसरा, आसिरो : आश्रय, शरण, मँझार : मध्य में, निरखौ : देख लिया, मती : मत।)

राग कान्हरा

तनक हरि चितवौजी मोरी ओर।।टेक।।
हम चितवत तुम चितवत नाहीं, दिल के बड़े कठोर।
मेरे आसा चितवनि तुमरी, और न दूजी दोर।
तुमसे हमकूँ कबर मिलोगे, हम सी लाख करोर।
अभी ठाढ़ी अरज करत हूँ, अरज करत भयो भोर।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, देस्यूँ प्राण अकोर।।5।।

(तनक : तनिक, जरा, चितवौ : देखो, चितवनि : कृपादृष्टि, दोर : दौड़, पहुँचने का स्थान, कबर : कब, सी : जैसी, अभी ठाढ़ी : आशा में खड़ी-खड़ी, देस्यूँ : दूँगी, अकोर : भेट।)

शब्द

मेरो मन बसिगो गिरधरलाल सों।।टेक।।
मोर मुकुट पीताम्बर हो, गल बैजन्ती माल।
गउवन के संग डोलत हो, जसुमति को लाल।
कालिंदी के तीर हो, कान्हा गउवाँ चराय।
सीतल कदम की छाहियाँ, हो मुरली बजाय।
जसुमति के दुवरवाँ हो, ग्वालिन सब जाय।
बरजहु आपन दुलरुवा, हमसों अरुझाय।
बृन्दाबन क्रीड़ा करै, गोपिन के साथ।
सुर नर मुनि मोहे हो, ठाकुर जदुनाथ।
इन्द्र कोप घन बरखो, मूसल जलधार।
बूड़त ब्रज को राखेऊ, मोरे प्रान अधार।
मीराँ के प्रभु गिरधर हो, सुनिये चित लाय।
तुम्हरे दरस की भूखी हो, मोहि कछु न सोहाय।।6।।

(बसिगो : ठहर गया, बस गया, सों : साथ, संग, डोलत हो : घूमते फिरते हो, कालिंदी : यमुना, दुवरवाँ : द्वार पर, दुलरुवा : दुलारा, लाड़ला।)

राग त्रिवेनी

निपट बँकट छबि अटके। मेरे नैन निपट.।।टेक।।
देखत रूप मदन मोहन को, पियत पियूखन मटके।
बारिज भवाँ अलक टेढ़ी मनो, अति सुगंधरस अटके।
टेढ़ी कटि टेढ़ी करि मुरली, टेढ़ी पाग लर लटके।
मीराँ प्रभु के रूप लुभानी, गिरधर नागर नटके।।7।।

(निपट : नितान्त, सर्वथा, बँकट : वक्र, टेढ़े, छबि : छवि, अटके : उलझे, फँसे, पियत : पी रहे हैं, पीयूखन : अमृत, मटके : फिरे, लौटे, करि : हाथ में, लर : मोतियों की लड़ी, माला, नटके : नटवर श्रीकृष्ण।)

राग गूजरी

या मोहन के मैं रूप लुभानी।।टेक।।
सुंदर वदन कमल दल लोचन, बाँकी चितवन मंद मुसकानी।
जमना के तीरे नीरे धेन चरावै, वंशी में गावें मीठी बानी।
तन मन धन गिरधर पर वारूँ, चरण कँवल मीराँ लपटानी।।8।।

(या : इस, दल : पंखुरी, बाँकी : तिरछी, मुसकानी : मुस्कान, नीरे : पास, नजदीक, लपटानी : लिपट गयी।)

जब से मोहिं नंदनंदन, दृष्टि पड़्यो माई।
तब से परलोक लोक, कछू न सोहाई।
मोरन की चंद्रकला, सीस मुकुट सोहै।
केसर को तिलक भाल, तीन लोक मोहै।
कुंडल की अलक झलक, कपोलन पर धाई।
मनो मीन सरबर तजि, मकर मिलन आई।
कुटिल भृकुटि तिलक भाल, चितवन में टौना।

खंजन अरु मधुप मीन, भूले मृग छौना।
सुंदर अति नासिका, सुग्रीव तीन रेखा।
नटवर प्रभु भेष धरे, रूप अति विसेषा।
अधर बिंब अरुन नैन, मधुर मंद हाँसी।
दसन दमक दाड़िम दुति, चमके चपला सी।
छुद्र घंट किंकिनी, अनूप धुनि सोहाई।
गिरधर के अंग अंग, मीराँ बलि जाई।।9।।

(नंदनंदन : नंद के पुत्र श्रीकृष्ण, मकर : मगरमच्छ, टौना : टूना, जादू, बिंब : बिंबा नाम के फल के जैसा लाल, मंद : हलकी, हाँसी : हँसी, दमक : चमक, आभा, दाड़िम दुति : अनार की कांति, चपला : बिजली, छुद्र घंट किंकिनी : घुँघरूदार करधनी, अनूप : अनुपम।)

प्रेमाशक्ति

राग नीलांबरी

नैणा लोभी रे बहुरि सके नहिं आइ ।।टेक।।
रूँम रूँम नखसिख सब निरखत, ललकि रहे ललचाइ।
मैं ठाढ़ी ग्रिह आपणे री, मोहन निकसे आइ।
बदन चंद परकासत हेली, मंद मंद मुसकाइ।
लोक कुटंबी गरजि बरजहीं, बतियाँ कहत बनाइ।
चंचल निपट अटक नहिं मानत, परहथ गये बिकाइ।
भली कहौ कोइ बुरी कहौ मैं, सब लई सीसि चढ़ाइ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर के बिनि, पल भरि रह्यो न जाइ।।10।।

(नैणा : नयन, आँखें, बहुरि : लौटकर, रूँम रूँम : रोम-रोम, ललकि रहे : अभिलाषा मन में लेकर, ललचाइ : अधीर होकर, ठाढ़ी : खड़ी थी, ग्रिह : घर के द्वार पर, आपणे : अपने, परकासत : प्रकाशित करते हुए, हेली : सहेली, गरजि बरजहीं : बार-बार बरजते हैं, अटक : रोक, व्यवधान, परहथ : पराये हाथों।)

राग कामोद

आली रे मेरे नैणाँ बाण पड़ी।।टेक।।
चित्त चढ़ी मेरे माधुरी मूरत, उर बिच आन अड़ी।
कब की ठाढ़ी पंथ निहारूँ, अपने भवन खड़ी।।
कैसे प्राण पिया बिनि राखूँ, जीवन मूर जड़ी।
मीराँ गिरधर हाथ बिकानी, लोग कहैं बिगड़ी।।11।।

(बाण : बान, स्वभाव, चित्त चढ़ी : मन में घर कर चुकी, माधुरी : माधुर्य से परिपूर्ण, आन अड़ी : आकर जम गयी।)

प्रेमाभिलाषा

शब्द

नैनन बनज बसाऊँ री, जो मैं साहिब पाऊँ।।टेक।।
इन नैनन मेरा साहिब बसता, डरती पलक न नाऊँ, री।
त्रिकुटी महल में बना है झरोखा, तहाँसे झाँकी लगाऊँ, री।
सुन्न महल में सुरत जमाऊँ, सुख की सेज बिछाऊँ, री।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ, री।।12।।

(बनज : कमल, साहिब : इष्ट, पलक न नाऊँ : पलकें झपके बिना, अपलक, त्रिकुटी महल : आँखों का मध्यभाग, झरोखा : खिड़की, झाँकी लगाऊँ : ध्यान करने का लक्ष्य बनाऊँ, सुन्न महल में : ब्रह्म रंध्र में, सुरत : ध्यान, समाधि।)

राग मुल्तानी

असा पिया जाण न दीजै हो।।टेक।।
तन मन धन करि वारणै, हिरदे धरि लीजै, हो।
आव सखी मिलि देखिये, नैणाँ रस पीजै, हो।
जिह जिह विधि रीझै हरी, सोई विधि कीजै, हो।
सुंदर स्याम सुहावणा मुख देख्या जीजै, हो।
मीराँ के प्रभु रामजी, बड़ भागण रीझै, हो।।13।।

(असा : ऐसे, अनुपम, जाण : जाने, वारणै : समर्पण, नैणाँ : नेत्रों द्वारा, रस : सौंदर्य रस, जिह जिह : जिस-जिस, विधि : ढंग, प्रकार, सुहावणा : दर्शनीय, मनोहर, देख्या : देखकर, बड़ भागण : बड़े भाग्य वाली, रीझै हो : आनन्दित होती है।)

राग मालकोस

श्री गिरधर आगे नाचूँगी।।टेक।।
नाचि नाचि पिव रसिक रिझाऊँ, प्रेमी जन कूँ जाचूँगी।
प्रेमप्रीत की बाँधि घूँघरू, सुरत की कछनी काछूँगी।
लोक लाज कुल की मरजादा, यामें एक न राखूँगी।
पिव के पँलगा जा पौढूँगी, मीराँ हरि रंग राचूँगी।।14।।

(पिव रसिक : प्रियतम, श्रीकृष्ण, जाचूँगी : प्रार्थना करूँगी, कछनी काछूँगी : कछोरा पहनूँगी, सुरत काछूँगी : ध्यान लगाऊँगी, यामें : इनमें से, पिव...पौढूँगी : इष्ट के साथ तादात्म्य-संबंध कर लूँगी, राचूँगी : रँग जाऊँगी।)

आत्मिक प्रेम

राग झिंझोटी

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट, मेरो पति सोई।
छाँड़ि दई कुल की कानि, कहा करिहै कोई।
संतन ढिक बैठि बैठि, लोक लाज खोई।
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेल फैल गई, आणंद फल होई।
भगति देखि राजी हुई, जगति देखि रोई।
दासी मीराँ लाल गिरधर, तारो अब मोहीं।।15।।

(छाँड़ि दई : त्याग दी, कानि : मर्यादा, कहा : क्या, करिहै : करेगा, लोक : समाज, अँसुवन जल : अश्रु बिंदुओं द्वारा, आणंद फल : आनन्द स्वरूप परिणाम, भगति : भक्तजन, राजी : प्रसन्न, जगति : संसार की दशा, रोई : दुखी हुई, मोहीं : मुझे।)

राग पटमंजरी

मैं तो साँवरे के रंग राची।।टेक।।
साजि सिंगार बाँधि पग घूँघरू, लोकलाज तजि नाची।
गई कुमति लई साधु की संगति, भगतरूप भई साँची।
गाय गाय हरि के गुन निसदिन, काल व्याल सूँ बाँची।
उण बिन सब जग खारो लागत, और बात सब काँची।
मीराँ श्री गिरधरलाल सूँ, भगति रसीली जाँची।।16।।

(रंग राची : रंग में रँग गयी, लई : स्वीकार कर ली, खारो : कड़वा, काँची : कच्ची, रसीली : मधुर।)

राग गुनकली

मैं तो गिरधर के घर जाऊँ।।टेक।।
गिरधर म्हाँरो साँचो प्रीतम, देखत रूप लुभाऊँ।
रैण पड़ै ही उठि जाऊँ, भोर गये उठि आऊँ।
रैणदिना बाके संग खेलूँ, ज्यूँ त्यूँ वाहि रिझाऊँ।
जो पहिरावै सोई पहिरूँ, जो दे सोई खाऊँ।
मेरी उणकी प्रीत पुराणी, उण बिनि पल न रहाऊँ।
जहाँ बैठावें तितही बैठूँ, बेचै तो बिक जाऊँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बार बार बलि जाऊँ।।17।।

(म्हाँरो : मेरा, साँचो : सच्चा, वास्तविक, लुभाऊँ : मुग्ध हो जाती हूँ, रैण पड़ै ही : रात होते ही, रैणदिना : दिन-रात, ज्यूँ त्यूँ : जैसे-तैसे, जिस प्रकार भी, रहाऊँ : रह सकती हूँ।)

मैं तो म्हाँरा रमैया ने देखबो करूँ री।।टेक।।
तेरे ही उमरण, तेरो ही सुमरण, तेरो ही ध्यानु धरूँ री।
जहाँ जहाँ पाँव धरणी पर, तहाँ तहाँ निरत करूँ री।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणाँ लिपट परूँ री।।18।।

(रमैया ने : प्रियतम राम को, तेरो सुमरण : तेरा ही स्मरण व चिन्तन।)

अविनाशी प्रियतम

राग माँड

माई री मैं तो लीयो गोबिन्दो मोल।।टेक।।
कोई कहै छाने कोई कहै चौड़े, लियो री बजंता ढोल।
कोई कहै मुँहघो, कोई सूँहघो, लियो री तराजू तोल।
कोई कहै कारो कोई कहै गोरो, लियो री अमोलिक मोल।
याही कूँ सब लोग जाणत है, लियो री आँखी खोल।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ, पूरब जनम कौ कोल।।19।।

(माई री : री सखी, लीयो : लिया है, छाने : छिपाकर, चौड़े : खुलेआम, बजन्ता दोल : बजाते हुए, प्रकट रूप में, मुँहघो : महँगा, सूँहघो : सस्ता, लीयो री...तोल : नाप-जोखकर, अमोलिक मोल : अनमोल समझकर, जाणत है : जानते हैं, आँखी खोल : अच्छी तरह से देख-भाल के, कोल : वायदा।)

सखी री मैं तो गिरधर के रंग राती।।टेक।।
पचरंग मेरा चोला रँगा दे, मैं झुरमुट खेलन जाती।
झुरमुट में मेरा साईं मिलेगा, खोल अडम्बर गाती।
चंदा जायगा सुरज जायगा, जायगा धरण अकासी।
पवन पाणी दोनों ही जाँयगे, अटल रहे अविनासी।
सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की कर बाती।

प्रेमहटी को तेल बनाले, जगा करे दिन राती।
जिनके पिय परदेस बसत हैं, लिखि लिखि भेजैं पाती।
मेरे पिय मो माहिं बसत हैं, कहूँ न आती जाती।
पीहर बसूँ न बसूँ सास, घर सतगुर शब्द सँगाती।
ना घर मेरा न घर तेरा, मीराँ हरि रंग राती।
सुरत निरत का दिवला सँजोले, मनसा की करले बाती।
प्रेम हटी का तेल मँगा ले, जगे रह्या दिन ते राती।
सतगुर मिलिया साँसा भाग्या, सैने बताई साँची।
ना घर तेरा न घर मेरा, गावै मीराँ दासी।।20।।

(रंग राती : प्रेम के रंग में रँगी, पचरंग : पाँच रंगों वाला अथवा पाँच तत्वों से बना, चोला : लम्बा व ढीला कुर्ता, झुरमुट : एक खेल, गाती : शरीर पर का आवरण, सुरत : परमात्मा की स्मृति, निरत : निरति, विरक्ति, दिवला : दिया, मनसा : मन, जगे रह्या : जल रहा है, साँस : संशय, भ्रम, सैने : संज्ञा।)

राग पीलू बरवा

बड़े घर ताली लागी रे, म्हाँरा मन री उणारथ भागी रे।।टेक।।
छीलरिये म्हाँरो चित्त नहीं रे, डाबरिये कुण जाव।
गंगा जमना सूँ काम नहीं रे, मैं ता जाइ मिलूँ दरियाव।
हालयाँ मोलयाँ सूँ काम नहीं रे, सीख नहीं सिरदार।
कामदाराँ सूँ काम नहीं रे, मैं तो जाव करूँ दरबार।
काच कथीर सूँ काम नहीं रे, लोहा चढ़े सिर भार।
सोना रूपा सूँ काम नहीं रे, म्हाँरे हीराँ रो बौपार।
भाग हमारो जागियो, रे भयो सँमद सूँ सीर।
इम्रित प्याला छाँड़ि कै, कुण पीवे कड़वो नीर।
पीपा को प्रभु परचो दीन्हौ, दिया रे खजीना पूर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, धणी मिल्या छै हजूर।।21।।

(ताली लागी : लगन लग गयी, म्हाँरा : हमारा, मेरे, मन री : मन

की, उणारथ : लालसा, छीलरिये : छीलर, तालाब, कुण जाव : कौन जावे, दरियाव : समुद्र, दरिया, हालयाँ मोलयाँ : नौकर-चाकर, सूँ : से, जाव : जवाब, कथीर : रांगा, सीर : संबंध, इम्रित : अमृत, पीपा : पीपा नामक एक भक्त, परचो : परिचय, खजीना : खजाना, धणी : पति, स्वामी।)

राग मालकोस

मैं अपणो सैंया संग साँची।।टेक।।
अब काहे की लाज सजनी, परगट ह्वै नाची।
दिवस भूख न चैन कबहूँ, नींद निसि नासी।
बेधि वार पार ह्वै गो, ग्यान गुह गाँसी।
कुल कुटंबी आन बैठे, मनहुँ मधुमासी।
दासी मीराँ लाल गिरधर, मिठी जग हाँसी।।22।।

(सैंया : स्वामी, गुह : गूढ़, गाँसी : भेद की बात, आन : आकर, जग हाँसी : लोकलाज।)

राग पटमंजरी

मीराँ लागो रग हरी, औरन रग अटक परी।।टेक।।
चूड़ो म्हाँरे तिलक अरु माला, सील बरत सिणगारो।
और सिंगार म्हाँरे दाय न आवै, यो गुर ग्यान हमारो।
कोई निन्दो कोई बिन्दो म्हे तो, गुण गोविंद का गास्याँ।
जिण मारग म्हाँरा साध पधारै, उण मारग म्हे जास्याँ।
चोरी न करस्याँ जिव न सतास्याँ, काँई करसी म्हाँरो कोई।
गज से उतर के खर नहिं चढ़स्याँ, ये तो बात न होई ।।23।।

(रग हरी : हरि या कृष्ण का रंग, सील बरत : शील और व्रत, सिणगारो : श्रृंगार, दाय : पसन्द, गुर ग्यान : गुरु ग्यान, बिन्दो : वंदो, प्रशंसा करो, गास्याँ : गायेगी, करसी : करेगा, चढ़स्याँ : चढ़ेगी।)

मेरो मन लागो हरि सूँ, अब न रहूँगी अटकी।
गुरु मिलिया रैदास जी, दीन्हीं ग्यान की गुटकी।
चोट लगी निज नाम हरी की, म्हाँरो हिवड़े खटकी।
मोती माणिक परत न पहिरूँ, मैं कबकी नटकी।
गेणो तो म्हाँरे माला दोवड़ी, और चंदन की कुटकी।
राज कुल की लाज गमाई, साधाँ के संग मैं भटकी।
नित उठ हरिजी के मंदिर जास्याँ, नाच्याँ दे दे चुटकी।
भाग खुल्यो म्हाँरो साध संगत सूँ, साँवरिया की बटकी।
जेठ बहू की काण न मानूँ, घूँघट पड़ गई पटकी।
परम गुराँ के सरण में रहस्याँ, परणाम कराँ लुटकी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, जनम मरण सूँ छुटकी।।24।।

(गुटकी : घूँट, हिवड़े : हृदय में, खटकी : रीसने लगी, नटकी : अस्वीकार कर दी, गेणो : गहने, दोवड़ी : गले में पहनने की माला, कुटकी : छोटा टुकड़ा, साधाँ : साधुओं, बटकी : मार्ग की, काण : मर्यादा, लाज, लुटकी : लटककर।)

राग हमीर

आवो सहेल्या रली कराँ हे, पर घर गवण निवारि।
झूठा माणिक मोतिया री, झूठी जगमग जोति।
झूठा सब आभूखणा री, साँचा पियाजी री पोति।
छूठा पाट पटंबरा रे, झूठा दिखणी चीर।
साँची पियाजी री गूदड़ी, जामे निरमल रहे सरीर।
छप्पन भोग बुहाइ दे हे, इन भोगनि में दाग।
लूण अलूणो ही भलो हे, अपणे पियाजी को साग।
देखि विराणै निवाँण कूँ हे, क्यूँ उपजावै खीज।
कालर अपणो ही भलो हे, जामें निपजै चीज।
छैल विराणो लाख को हे, अपणे काज न होइ।
ताके संग सीधारताँ हे, भला न कहसी कोइ।

वर हीणो अपणो भलो हे, कोढ़ी कुष्टी कोइ।
जाके संग सीधारताँ हे, भला कहे सब लोइ।
अविनासी सूँ बालबा हे, जिनसूँ साँची प्रीत।
मीराँ कूँ प्रभू मिल्या हे, एही भगति की रीत।।25।।

(रली कराँ : केलि करें, पर घर गवण : दूसरे के घर आना-जाना, निवारि : छोड़कर, पियाजी री पोति : प्रिय की माला, पाट पटंबरा : रेशमी वस्त्र, दिखणी : दक्षिण देश का एक वस्त्र, चीर : साड़ी, साँची : सच्ची, जामे : जिसमें, बुहाइ दे : बहा दो, लूण : नमक, विराणै : पराये, निवाँण : नीची उपजाऊ भूमि, खीज : द्वेष, कालर : अनुपजाऊ जमीन, निपजै : पैदा होती है, छैल : रसिक, युवा पुरुष, लाख को : अनमोल, हीणो : हीन, लोइ : लोग, सूँ : जैसा, एही : इसी।)

कोई कछू कहे मन लागा।।टेक।।
ऐसी प्रीत लगी मन मोहन ज्यूँ सोना में सोहागा।
जनम जनम का सोया मनुवाँ सतगुर सब्द सुण जागा।
माता पिता सुत कुटुम कबीला, टूट गयो ज्यूँ तागा।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भाग हमारा जागा।।26।।

(कछू : कुछ भी, सब्द : शब्द, जागा : ज्ञान प्राप्त कर लिया, कुटुम : कुटुम्ब, परिवार।)

स्वजनों से मतभेद

मीराँ—माई म्हाँने सुपने में, परण गया जगदीस।
सोती को सुपना आविया जी, सुपना विस्वा बीस।
माँ— गैली दीखे मीराँ बावली, सुपना आल जंजाल।
मीराँ—माई म्हाँने सुपने में परण गया गोपाल।
अंग अंग हल्दी मैं करी जी, सुधे भीज्यो गात।
माई म्हाँने सुपने में; परण गया दीनानाथ।

छप्पन कोट जहाँ जान पधारे, दुलहा श्री भगवान।
सुपने में तोरन बाँधियो जी, सुपने में आई जान।
मीराँ को गिरधर मिल्या जी, पूर्व जनम के भाग।
सुपने में म्हाँने परण गया जी, हो गया अचल सुहाग।।27।।

(म्हाँने : हमको, परण गया : ग्रहण किया, आविया जी : दीख पड़ा, विस्वा बीस : स्पष्ट, सुधे : अमृत से।)

मीराँ–तू मत गरजे माइड़ी, साधाँ दरसण जाती।
राम नाम हिरदे बसै, माहिले मद माती।
माँ– माई कहै सुन धीहड़ी, काहे गुण फूली।
लोक सोवै सुख नींदड़ी थ क्यूँ रैणज फूली।
मीराँ–गली दुनिया बावली, ज्याँ कूँ राम न भावे।
ज्याँ रे हिरदे हरि बसे, त्याँ कूँ नींद न आवे।
चौबास्याँ की बावड़ी, ज्याँ कूँ नीर न पीजे।
हरि नारे अमृत झरै, ज्याँ की आस करीजै।
रूप सुरंगा राम जी, मुख निरखत जीजै।
मीराँ व्याकुल विरहिणी, अपनी कर लीजै।।28।।

(गरजे : बिगड़कर बोले, माइड़ी : माँ, माहिले : भीतर, धीहड़ी : बेटी, रैणज : रातभर, गली : मूर्ख, ज्याँ कूँ : जिसे, ज्याँ रे : जिसके, त्याँ कूँ : उसको।)

मीराँ– म्हाँना गुरु गोविंद री आण, गोरल ना पूजाँ।
सास– ओरज पूजै गोरज्याँ जी, थे क्यूँ पूजो न गोर।
मन वंछत फल पावस्यो जी, थे क्यूँ पूजे ओर।
मीराँ– नहिं हम पूज्याँ गोरज्याँ जी, नहिं पूजाँ अनदेव।
परम सनेही गोविंदो, थे काँई जाना म्हाँरो भेव।
सास– बाल सनेही गोविंदो, साध सताँ को काम।
थे बेटी राठोड़ की थाँने राज दियो भगवान।

मीराँ— राज किये ज्यानाँ करणे दीज्यो, मैं भगता री दास।
सेवा साधू जनन की, म्हाँरे राम मिलण की आस।
सास— लाजै पीहर सासरो, माइतणो मोसाल।
सबही लाजे मेडतिया जी, थाँसू बुरा कहे संसार।
मीराँ— चोरी कराँ न मारगी, नहिं मैं करूँ अकाज।
पुन्न के मारग चालताँ, झक मारो संसार।
नहिं मैं पीहर सासरे, नहीं पिल्यिा जी री साथ।
मीराँ ने गोबिंद मिया जी, गुरु मिलिया रैदास।।29।।

(री : की, आण : आन, शपथ, गोरल : गनगौर, ना पूजाँ : नहीं पूजती, ओरज : और लोग तो, भेव : भेद, ज्यानाँ : जो कोई भी।)

ऊदाबाई—थाँने बरज-बरज मैं हारी, भाभी, मानो बात हमारी।
राणे रोस कियो थाँ ऊपर, साधो में मत जारी।
कुल को दाग लगै छै भाभी, निंदा हो रही भारी।
साधो रे संग बन बन भटकी, लाज गमाई सारी।
बड़ा घर थें जनम लियो छै, नाची दे दे तारी।
बर पायो हिंदवाणै सूरज, थे काँई मन धारी।
मीराँ गिरधर साध संग तज, चलो हमारी लारी।
मीराँबाई— मीराँ बात नहीं जग छानी, ऊदा समझो सुघर सयानी।
साधू मात पिता कुल मेरे, सजन सनेही ग्यानी।
संत चरण की सरण रैन दिन, सत्त कहत हूँ बानी।
राणा ने समझावो जावो, मैं तो बात न मानी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, संताँ हाथ बिकानी।
ऊदाबाई— भाभी बोली बचन बिचारी।
साधों की संगत दुख भारी, मानो बात हमारी।
छाप तिलक गलहार उतारो, पहिरो हार हजारी।
रतन जड़ित पहिरो आभूषण, भोगो भोग अपारी।
मीराजी थे चलो महल में, थाँने सोगन म्हारी।
मीराँबाई— भाव भगत भूषण सजे, सील संतों सिंगार।

ओढी चूनर प्रेम की, गिरधर जी भरतार।
ऊदाबाई मन समझ, जावो अपने धाम।
राज पाट भोगो तुम्हीं, हमें न तासूँ काम।।30।।

(थाँ : तेरे; थे : तूने, लारी : संग, सोगन : सौगन्ध।)

राग कामोद

बरजी मैं काहू की नाहिं रहूँ।।टेक।।
सुनौ री सखी तुम चेतन होइके, मन की बात कहूँ।
साध संगति करि हरि सुख लीजै, जगसूँ दूरि रहूँ।
तन धन मेरे सब ही जावो, भलि मेरो सीस लहूँ।
मन मेरो लागी सुमरिण सेती, सब का मैं बोल सहूँ।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, सतगुरु सरण गहूँ।।31।।

(बरजी : रोकने पर, चेतन : सावधान, भलि : चाहे, लहूँ : कटा दूँ, गहूँ : पकड़ती हूँ।)

राग पीलू

तेरो कोई नहिं रोकणहार, मगन होइ मीराँ चली।
लाज सरम कुल की मरजादा, सिर सैं दूरि करी।
मान अपमान दोउ धर पटके, निकसी हूँ ग्याँन गली।
ऊँची अटरिया लाज किंवड़िया, निरगुण सेज बिछी।
पँचरंगी झालर सुभ सोहै, फूलन फूल कली।
बाजूबन्द कडूला सोहै, सिन्दूर माँग भरी।
सुमरिन थाल हाथ में लीन्हा, सोभा अधक खरी।
सेज सुखमणा मीराँ सौहै सुभ है आज घरी।
तुम जावो राणा घर अपणे, मेरी तेरी नाहिं सरी।।32।।

(रोकणहार : रोकने वाला, सरम : शर्म, लज्जा, सैं : से, किंवड़िया :

दरवाजा, खरी : सच्ची, सरी : बराबरी।)

आज म्हाँरो साधु जननो संग रे, राणा म्हाँरा भाग भल्या।।टेक।।
साधु जननो संग जो करिये, चढ़े ते चौगणों रंग रे।
साकट जनन तो संग न करिये, पड़े भजन में भंग रे।
अठसठ तीरथ संतों ने चरणे, कोटि कासी ने सोय गंग रे।
निन्दा करसे नरक कुंड माँ जासे आँधला अपंग रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, संतों नीरज म्हाँरे अंग रे।।33।।

(जननो : लोगों का, चढ़े ते : चढ़ जाता है, साकट जन : भक्तिहीन, अठसठ तीरथ : अड़सठ तीर्थस्थान, सोय : वही, करसे : करेगा।)

राग पूरिया कल्याण

राणाजी म्हें तो गोविंद का गुण गास्याँ।।टेक।।
चरणाम्रित को नेम हमारो, नित उठ दरसण जास्याँ।
हरि मन्दिर में निरत करास्याँ, घुँघरिया घमकास्याँ।
राम नाम का झाझ चलास्याँ, भवसागर तर जास्याँ।
यह संसार बाड़ का काँटा, ज्याँ संगत नहिं जास्याँ।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, निरखपरख गुण गास्याँ।।34।।

(दरसण : दर्शन, निरत : नृत्य, झाझ : जहाज, ज्याँ : जिसकी, निरखपरख : देखभालकर।)

स्पष्टोक्ति

राग खम्माच

नहिं भावै थाँरो देसलड़ो रँगरूड़ो।।टेक।।
थाँरा देसाँ में राणा साध नहीं छै, लोग बसै सब कूड़ो।
गहणा गाँठी राणा हम सब त्यागा, त्याग्यो कर रो चूड़ो।

काजल टीकी हम सब त्यागा, त्याग्यो छै बाँधन जूड़ो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बर पायो छै पूरो।।35।।

(भावै : सुहाता है, थाँरो : आपका, देसलड़ो : देश, रँगरूड़ो : विचित्र, सुन्दर, कूड़ो : असज्जन व्यक्ति, गहणा : गहने, कर रो : हाथ की, जूड़ो : वेणी।)

राणाजी मुझे यह बदनामी लगे मीठी।।टेक।।
कोई निन्दो कोई बिन्दो, मैं चलूँगी चाल अपूठी।
साँकली गली सतगुर मिलिया, क्यूँ कर फिरूँ अपूठी।
सतगुर जी सूँ बातज करताँ, दुरजन लोगाँ ने दीठी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दुरजन जलो जा अँगीठी।। 36।।

(अपूठी : उलटी, बातज : बातें, दीठी : देखा।)

राग अगना

राणाजी थे क्याँने राखो म्हाँसूँ बैर।।टेक।।
थे तो राणाजी म्हाँने इसड़ा लागों ज्यों ब्रच्छन में कैर।
महल अटारी हम सब त्यागा, त्याग्यो थाँरो बसनो सहर।
काजल टीकी राणा हम सब त्याग्या भगवीं चादर पहर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इमरित कर दियो जहर।।37।।

(क्याँने : क्यों, म्हाँसूँ : हमसे, इसड़ा : ऐसे, ब्रच्छन में : वृक्षों में, कैर : करील का वृक्ष, इमरित : अमृत।)

राग पहाड़ी

सीसोद्यो रूठ्यो तो म्हाँरो काँई करलेसी।
म्हें तो गुण गोविंद का गास्याँ, हो माई।।टेक।।
राणो जो रूठ्यो बाँरो देस रखासी।

हरि रूठ्या कुम्हलास्याँ, हो माई।
लोक लाज की काण न मानूँ।
निरभै निसाण घुरास्याँ, हो माई।
राम नाम का झाझ चलास्याँ।
भवसागर तर जास्याँ, हो माई।
मीराँ सरण सबल गिरधर की।
चरण कँवल लपटास्याँ, हो माई।।38।।

(काँई : क्या, लेसी : लेगा, बाँरो : उनका रखासी : रख लेगा, निरभै : निर्भय होकर, निसाण : निशान, चिह्न।)

राग पीलू

पग घुँघरू बाँध मीराँ नाची, रे।।टेक।।
मैं तो मेरे नारायण की, आपहि हो गइ दासी, रे।
लोग कहैं मीराँ भई बावरी, न्यात कहैं कुलनासी, रे।
विष का प्याला राणाजी भेज्या, पीवत मीराँ ही हाँसी, रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिले अविनासी, रे।।39।।

(आपहि : स्वयं ही, न्यात : नातेदार, संबंधी, कुलनासी : कुल का नाश करने वाली, हाँसी : हँसी।)

रामतने रंगराची, राणा मैं तो साँवलिया रंगराची, रे।।टेक।।
ताल पखावज मिरदंग बाजा, साधाँ आगे नाची, रे।
कोई कहे मीराँ भई बावरी, कोई कहे मदमाती, रे।
विष का प्याला राणा भेज्या; अमृत कर आरोगी, रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, जनम जनम की दासी, रे।।40।।

(रामतने : राम के, साँवलिया : कृष्ण, आरोगी : ग्रहण कर लिया।)

राणाजी थे जहर दियो म्हे जाणी।।टेक।।
जैसे कंचन दहत अगिन में, निकसृत बाराबाणी।
लोक लाज कुल काण जगत की, दइ बहाय जस पाणी।
अपणे घर का परदा करले, मैं अबला बौराणी।
तरकस तीर लग्यो मेरे हियरे, गरक गयो सनकाणी।
सब संतन पर तन मन वारो, चरण कँवल लपटाणी।
मीराँ को प्रभु राखि लई है, दासी अपणी जाणी।।41।।

(थे : तुमने, म्हे : मैं, जाणी : जान गयी, दहत : तपाया जाता है, बाराबाणी : बारह वाणी, गरक : प्रवेश कर गया, सनकाणी : सनक गयी, पगली हो गयी।)

राणा जो म्हाँरी प्रीत पुरबली मैं काँई करूँ।।टेक।।
राम नाम बिन घड़ी सुहावे, राम मिलें म्हाँरा हियरा ठराय।
भोजनियाँ नहिं भावे म्हाँने, नींदलड़ी नहिं आय।
विष को प्यालो भेजियो जी, जावो मीराँ पास।
कर चरणामृत पी गई, म्हाँरे रामजी के विस्वास।
छापा तिलक बनाविया जी, मन में निश्चय धार।
रामजी काज सँवारिया, म्हाँने भावे गरदन मार।
पेट्याँ बासक भेजिया जी यो छै मीतिडाँ रो हार।
नाग गले में पहिरिया, म्हाँरे महलाँ भयो उजार।
राठौडाँ री धीयड़ी जी, सीसोद्याँ रे साथ।
ले जाती बैकुंठ कूँ म्हाँरी नेक न मानी बात।
मीराँ दासी राम की जी, राम गरीब निवाज।
जन मीराँ को राखज्यों, कोई बाह गहे की लाज।।42।।

(पुरबली : पूर्व जन्म की, ठराय : शीतल हो जाता है, बासक : सर्प, धीयड़ी : लड़की, राखज्यों : रख लीजिये।)

राग जौनपुरी

मैं गोविंद गुण गाणा।।टेक।।
राजा रूठै नगरी राखै, हरि रूठ्याँ कहँ जाणा।
राणै भेज्या जहर पियाला, इमिरत करि पी जाणा।
डबिया में भेज्या ज भुजंगम, सालिगराम करि जाणा।
मीराँ तो अब प्रेम दिवाणी, साँवलिया वर पाणा।।43।।

(गाणा : गाऊँगी, रूठ्याँ : रूठने पर, ज : जु, जैसे, दिवाणी : पगली, पाणा : पाया है।)

यो तो रंग धत्ता लग्यो ए माय ।।टेक।।
पिया पियाला अमर रस का, चढ़ गई धूम घुमाय।
यो तो अमल म्हाँरो कबहुँ न उतरे, कोट करो न उपाय।
साँप पिटारो राणाजी भेज्यो, द्यो मेड़तणी गल डार।
हँस-हँस मीराँ कंठ लगायो, यो तो म्हाँरे नौसर हार।
विष को प्यालो राणाजी मेल्यो, द्यो मेड़तणी ने पाय।
कर चरणामृत पी गई रे, गुण गोविंद रा गाय।
पिया पियाला नाम का रे, और न रंग सोहाय।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, काचो रंग उड़ जाय।।44।।

(यो : यह, धत्ता : खूब, माय : माँ, धूम : नशा, अमल : नशा, कोट : करोड़ों, अनेक, द्यो : दे देना।)

राग खम्माच

मीराँ मगन भई हरि के गुण गाय।।टेक।।
साँप पिटारा राणा भेज्यो, मीराँ हाथ दियो जाय।
न्हाय धोय जब देखण लागी, सालिगराम गई पाय।
जहर का प्याला राणा भेज्या, अमृत दीन्ह बनाय।
न्हाय धोय जब पीवण लागी, हो अमर अँचाय।

सूल सेज राणा ने भेजी, दीज्यो मीराँ सुलाय।
साँझ भई मीरा सोवण लागी, मानो फूल बिछाय।
मीराँ के प्रभु सदा सहाई, राखे विघन हटाय।
भजन भाव में मस्त डोलती, गिरधर पै बलि जाय।।45।।

(अँचाय : पीकर, सूल सेज : शूलों की सेज।)

राग पहाड़ी

हेली म्हाँसूँ हरि बिनि रह्यो न जाय।।टेक।।
सास लड़ै मेरी नन्द खिजावै, राणा रह्या रिसाय।
पहरो भी राख्यो चौकी विठारयो, ताला दियो जड़ाय।
पूर्व जनम की प्रीत पुराणी, सो क्यूँ छोड़ी जाय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, और न आवे म्हाँरी दाय।।46।।

(हेली : अरी सहेली, खिजावै : चिढ़ाती रहती है, जड़ाय : डलवाया है।)

अब नहिं बिसरूँ, म्हाँरे हिरदे लिख्यो हरि नाम।
म्हाँरे सतगुरु दियो बताय, अब नहिं बिसरूँ रे।।टेक।।
मीराँ बैठी महल में रे, ऊठत बैठत राम।
सेवा करस्याँ साध की, म्हाँरे और न दूजा काम।
राणाजी बतलाइया, कह देणो जवाब।
पण लमगाँ हरिनाम सूँ, म्हाँरो दिन दिन दूनो लाभ।
सीप भर्‍यो पाणी पिवे रे, टाँक भर्‍यौ अन्न खाय।
बतलायाँ बोली नहीं रे, राणोजी गया रिसाय।
विष रा प्याला राणाजी भेज्या दीजो मेड़तणी के हाथ।
कर चरणामृत पी गई, म्हाँरा सबल धणी का साथ।
विष को प्यालो पी गई, भजन करे उस ठौर।
थाँरा मारी ना मरूँ म्हाँरो राखणहारो और।

राणोजी मोपर कोप्यो रे, मारूँ एक ज सेल।
मार्‌याँ पराछित लागसी, म्हाँने दीजो पीहर मेल।
राणो मोपर कोप्यो रे, रती न राख्यो मोद।
ले जाती बैकुंठ में, यो तो समझ्यो नहीं सिसोद।
छापा तिलक बनाइया, तजिया सब सिंगार।
म्हें तो सरणे राम के, भल निन्दो संसार।
माला म्हाँरे देवड़ी, सील बरत सिंगार।
अबके किरपा कीजियो, हूँ तो फिर बाँधू तलवार।
रयाँ बैल जुताय कै, ऊटाँ कसियो भार।
कैसे तोडूँ राम सूँ, म्हाँरो भोभो रो भरतार।
राणो साँड्‌यो मोकल्यो, जाज्यो एके दौड़।
कुल की तारण अस्तरी, या तो मुरड़ चली राठौड़।
साँड्‌यो पाछो फेर्‌यो रे, परत न देस्याँ पाँव।
कर सूरापण नीसरी, म्हाँरे कुण राणे कुण राव।
संसारी निन्दा करे, दुखियो सब संसार।
कुल सारो ही लाजसी, मीरा थे जो भया जो ख्वार।
राती माती प्रेम की, विष भगत को मोड़।
राम अमल माती रहे, धन मीराँ राठौड़।।47।।

(बिसरूँ : भूल सकती, बतलाइया : पूछा है तो, कह देणो : कह देना, पण : बाजी, दाँव, सीप भर्‌यो : केवल थोड़ा-सा, टाँक भर्‌यो : थोड़ा-सा, बतलायाँ : पूछने पर, धणी : पति, स्वामी, पराछित : प्रायश्चित, पछतावा, मोद : प्रसन्नता, देवड़ी : भगवान् की, अस्तरी : स्त्री।)

राग सोहनी

मैं जाण्यो नाहीं प्रभु को मिलण कैसे होइ री।।टेक।।
आये मेरे सजना फिरि गये अँगना, मैं अभागण रही सोइ री।
फारूँगी चीर करूँ गल कंथा, रहूँगी बैरागण होइ री।
चूरियाँ फोरूँ माँग बखेरूँ, कजरा मैं डारूँ धोइ री।

निसबासर मोहि बिरह सतावै, कल न परत मोइ री।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, मिलि बिछरो मति कोइ री।।48।।

(सजना : प्रियतम, फिरि गये : लौट गये, अभागण : अभागिन, बैरागण : बैरागिन।)

जोगियाजी निसदिन जोऊँ बाट।।टेक।।
पाँव न चालै पंथ दुहेलो, आड़ा औघट घाट।
नगर आइ जोगी रम गया रे, मो मन प्रीत न पाइ।
मैं भोली भोलापन कीन्हौ, राख्यौ नहि बिलमाइ।
जोगिया कूँ जोवत बोहो दिन बीता, अजहूँ आयो नाहिं।
विरह बुझावण अन्तरि आवो, तपत लगी तन माहिं।
कै तो जोगी जग में नहीं, कैर विसारी मोइ।
काँइ करूँ कित जाऊँ री सजनी, नैण गुमायो रोइ।
आरती तेरी अन्तरि मेरे, आवो अपनी जाणि।
मीराँ व्याकुल बिरहिणी रे, तुम बिन तलफत प्राणि।।49।।

(जोऊँ : देखती हूँ, चालै : चलता है, दुहेलो : विकट, औघट : अटपटा, मो मन : मेरे मन में, जोवत : ढूँढते-ढूँढते, अन्तरि : हृदय में, काँई : क्या, तलफत : तड़पते हैं।)

जोगी मतजा मतजा मतजा, पाँइ परूँ मैं चेरी तेरी हौं।।टेक।।
प्रेम भगति को पैंड़ो ही न्यारौ, हमकूँ गैल बता जा।
अगर चंदण की चिता बणाऊँ, अपणे हाथ जला जा।
जल बल भई भस्म की ढेरी, अपणे अंग लगा जा।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, जोत में जोत मिला जा।।50।।

(पाँइ : पैरों, चेरी : दासी, पैंड़ो : मार्ग, न्यारौ : जुदा, अलग, गैल : रास्ता, अगर : सुगन्धित द्रव्य, जला जा : जलाता जा, ढेरी : राशि, जोत : ज्योति।)

होजी म्हाँराज छोड़ मत जाज्यो।।टेक।।
मैं अबला बल नाहिं गुसाईं, तुमहिं मेरे सिरताज।
मैं गुणहीन गुण नाहिं गुसाईं, तुम समरथ महराज।
रावली होइ के किणरे जाऊँ, तुमही हिवड़ा रो साज।
मीराँ के प्रभु और न कोई, राखो अबके लाज।।51।।

(होजी : अजी, जाज्यो : जाओ, गुसाईं : स्वामी, रावली : आपकी।)

राग बिहागरा

ऐसी लगन लगाइ कहाँ तू जासी।।टेक।।
तुम देखे बिन कलि न परति है, तलफि तलफि जिव जासी।
तेरे खातिर जोगण हूँगी, करवत लूँगी कासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल की दासी।।52।।

(जासी : जायेगा, खातिर : वास्ते, जोगण : जोगिन।)

राग बिलावल

पियाजी म्हाँरे नैणाँ आगे रहज्यो जी।।टेक।।
नैणाँ आगे रहज्यो, म्हाँने भूल मत जाज्यो जी।
भौसागर में बही जात हूँ, बेग म्हाँरी सुध लीज्यो जी।
राणाजी भेज्या बिख का प्याला, सो इमिरत कर दीज्यो जी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछुड़न मत कीज्यो जी।।53।।

(म्हाँने : हमारे, मेरे, सुध : खबर।)

राग सोरठ

थाँने काँई काँई कह समझाऊँ, म्हाँरा बाला गिरधारी।।टेक।।
पूर्व जनम की प्रीत हमारी, अब नहिं जात निवारी।

सुन्दर बदन जोवते सजनी, प्रीति भई छे भारी।
म्हाँरे घरे पधारो गिरधर, मंगल गावै नारी।
मोती चौक पूराऊँ बाल्हा, तन मन तो पर वारी।
म्हारो सगपण तोसूँ साँवलिया, जुगसूँ नहीं विचारी।
मीराँ कहे गोपिन को बाल्हो, हमसूँ भयो ब्रम्हचारी।
चरण सरण है दासी तुम्हरी, पलक न कीजे न्यारी।।54।।

(बाला : बल्लभ, प्यारा, जोवते : देखते ही, छे : है, न्यारी : अलग।)

राग प्रभाती

जागो म्हाँरा जगपति राइक, हँसि बोलो क्यूँ नहीं।।टेक।।
हरि छीजी हिरदा माँहि, पट खोलो क्यूँ नहीं।
तन मन सुरति सँजोइ, सीस चरणाँ धरूँ।
जहाँ जहाँ देखूँ म्हारो राम, जहाँ सेवा करूँ।
सदकै करूँ जी सरीर जुगै जुग बारणैं।
छोड़ी छोड़ी कुल की लाज, साहिब तेरे कारणैं।
थोड़ी थोड़ी लिखूँ सिलाम, बहोत करि जाणज्यौ।
बन्दी हूँ खानाजाद, महरि करि मानज्यौ।
हाँ हो म्हारा नाथ सुनाथ, बिलम नहिं कीजियै।
मीराँ चरणाँ की दास, दरस अब दीजियै।।55।।

(राइक : राजा, सँजोइ : सजाकर, सदकै : समर्पित, बारणै : वारी जाऊँ, सिलाम : सलाम, बंदी : दासी।)

राग सुखसोरठ

देखो सहियाँ हरि मन काठो कियो।।टेक।।
आवन कह गयो अजूँ न आयो, करि करि बचन गयो।
खान पान सुध बुध सब बिसरी, कैसे करि मैं जियो।

बचन तुम्हारे तुमही बिसारे, मन मेरो हर लयो।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, तुम बिनि फटत हियो।।56।।

(सहियाँ : सहेलियाँ, काठो : कठिन, फटत हियो : हृदय फट रहा है।)

जोगिया से प्रीत किया दुख होइ।।टेक।।
प्रीत कियाँ सुख ना मोरी सजनी, जोगी मित न कोइ।
राति दिवस कल नाहिं परत है, तुम मिलियाँ विनि मोइ।
ऐसी सूरत या जग माहीं फेरि न देखी सोइ।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, मिलियाँ आणंद होइ।।57।।

(कियाँ : करने से, मित : मित्र, विनि : बिना, फेरि : फिर कभी, आणंद : आनन्द।)

जोगिया री प्रीतड़ी है दुखड़ा रो मूल।।टेक।।
हिल मिल बात बणावत मीठी, पीछे जावत भूल।
तोड़त जेज करत नहिं सजनी, जैसे चंपेली के फूल।
मीराँ कहै प्रभु तुमरे दरस बिन, लगत हिवड़ा में सूल।।58।।

(प्रीतड़ी : प्रीति, प्रेम, मूल : कारण, बणावत : बनाता है, जेज : देरी, चंपेली : चमेली, सूल : शूल, पीड़ा।)

राग सोरठ

कोई दिन याद करोगे रमता राम अतीत।।टेक।।
आसण माड़ अडिग होय बैठा, याही भजन की रीत।
मैं तो जाणूँ जोगी संग चलेगा, छाँड़ि गया अधबीच।
आत न दीसे जात न दीसे, जोगी किसका मीत।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, चरणन आवै चीत।।59।।

(कोई दिन : किसी भी दिन, कभी न कभी, जाणूँ : जाना, चीत : चित्त, सुध-बुध।)

जावो निरमोहिया जाणों तेरी प्रीत।।टेक।।
लगन लगी जदि प्रीत और ही, अब कुछ औरि ही रीति।
इमरत पाइ के विष क्यूँ दीजै, कूँण गाँव की रीति।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, अपणी गरज के मीत।।60।।

(निरमोहिया : निर्मोही, जाणों : जान गयी, औरि : और, रीति : प्रकार की, पाइ : पिलाकर, कूँण : कौन से, गरज : स्वार्थ।)

जावादे जावादे जोगी किसका मीत।।टेक।।
सदा उदासी रहै मोरि सजनी, निपट अटपटी रीत।
बोलत बचन मधुर से मानूँ, जोरत नाहीं प्रीत।
मैं जाणूँ या पार निभैगी, छाँड़ि चले अधबीच।
मीराँ के प्रभु स्याम मनोहर, प्रेम पियारा मीत।।61।।

(जावादे : जाने दे, अटपटी : बेढंगी, मानूँ : मानो।)

धूतारा जोगी एकरसूँ हँसि बोल।।टेक।।
जगत बदीत करी मनमोहन, कहा बजावत ढोल।
अंग भभूति गले मृगछाला, तू जन गुढ़ियाँ खोल।
सदन सरोज बदन की सोभा, ऊभी जोऊँ कपोल।
सेली नाद वभूत न वटवो, अजूँ मुनी मुख खोल।।
चढ़ती बैस नैण अणियाले, तूँ घरि घरि मत डोल।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, चेरी भई बिन मोल।।62।।

(धूतारा : धूर्त, वंचक, छली, एकरसूँ : एक बार भी, बदीत : विदित, सदन : नवीन, सरोज : कमल का फूल, सेली : योगियों के पहनने की चादर, वभूत : विभूति, भस्म, अजूँ : अब भी, मुनी : मौनी, बैस : उम्र, अवस्था।)

द्वितीय खण्ड

राग श्याम कल्याण

हरि तुम हरो जन की भीर।।टेक।।
द्रोपती की लाज राखी, तुरत बाढ़यौ चीर।
भक्त कारण रूप नरहरि, धर्यौ आप सरीर।
हिरणाकुश मारि लीन्ह, धर्यौ नाहिं न धीर।
बूड़तो गजराज राख्यौ, कियौ बाहर नीर।
दासी मीराँ लाल गिरधर, चरण कँवल पै सीर।।63।।

(जन : भक्त, भीर : संकट, सरीर : शरीर, देह, सीर : शीश, सिर।)

राग रामकली

अब तो निभायाँ सरेगी, बाँह गहे की लाज।।टेक।।
समरथ सरण तुम्हारी सइयाँ, सरब सुधारण काज।
भन यगर संसार अपरबल, जामें तुम हो झ्याज।
निरधाराँ आधार जगतगुरु, तुम बिन होय अकाज।
जुग जुग भीर हरी भगतन की दीनी मोक्ष समाज।
मीराँ सरण गही चरणन की, लाज राखो महाराज।।64।।

(समरथ : समर्थ, अपरबल : प्रबल, योग्य, अपार, झ्याज : जहाज, निरधाराँ : निर्बलों के, असहायों के।)

हरि बिन कूण गती मेरी।।टेक।।
तुम मेरे प्रतिपाल कहिये, मैं राव री चेरी।
आदि अंत निज नाँव तेरो, हीया में फेरी।
बेरि बेरि पुकारि कहूँ, प्रभु आरति है तेरी।
यौ संसार विकार सागर, बीच में घेरी।
नाव फाटी प्रभु पाल बाँधो, बूड़त है बेरी।
विरहणि पिव की बाट जोवै, राखिल्यौ नेरी।
दासि मीराँ राम रटत है, मैं सरण हूँ तेरी।।65।।

(कूण : कौन-सी, यौ : यह, बेरी : नाव, नेरी : निकट।)

प्रभु जी थे कहाँ गया नेहड़ी लगाय।।टेक।।
छोड़ गया विस्वास संगाती, प्रेम की बाती बराय।
बिरह समंद में छोड़ गया छो, नेह की नाव चलाय।
मीराँ के प्रभु कबरे मिलोगे, तुम बिनि रह्योइ न जाय।।66।।

(थे : तू, नेहड़ी : नेह, प्रेमभाव, संगाती : साथी, बाती बराय : आग जलाकर, समंद : समुद्र, छो : हो, कबरे : अरे कब।)

राग मलार

डारि गयो मनमोहन पासी।।टेक।।
आँबा की डालि कोइल इक बोलै, मेरो मरण अरु जग केरी हाँसी।
बिरस की मारी मैं बन बन डोलूँ, प्रान तजूँ करवत ल्यूँ कासी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, तुम मेरे ठाकुर मैं तेरी दासी।।67।।

(पासी : फाँसी, केरी : की, ल्यूँ : लूँ, ठाकुर : स्वामी।)

राग विहाग

माई म्हारी हरिह न बूझी बात।।टेक।।
पंड मासूँ प्राण पति, निकसि यूँ नहीं जात।
पाट न खोल्या मुखाँ न बोल्या, साँझ भई परभात।
अबोलणाँ जुग बीतण लागो, तो काहे की कुसलात।
सावण आवण कह गया रे, हरि आवण की आस।
रैण अँधेरा बीज बीज चमकै, तारा गिणत निरास।
लेइ कटारी कंठ सरू, मरूँगी विष खाइ।
मीराँ दासी राम रती, लालच रही ललचाइ।।68।।

(बूझी बात : कुछ भी पूछा व समझा, पंड : शरीर, मासूँ : में से, पाट : परदा, परभात : सवेरा, प्रभात, कुसलात : कुशल, निरास : निराश।)

राग पूरिया धनाश्री

परम सनेही राम की निति ओलूँ री आवै।।टेक।।
राम हमारे हम हैं राम के, हरि बिन कछू न सुहावै।
श्रावण कह गये अजहुँ न आये, जिवड़ो अति उकलावै।
तुम दरसण की आस रमैया, कब हरि दरस दिखावै।
चरण कँवल की लगनि लगी नित, बिन दरसण दुख पावै।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यौ, आणंद बरण्यूँ न जावै।।69।।

(ओलूँ : स्मृति, याद, उकलावै : बेचैन है, रमैया : प्रियतम, बरण्यूँ : वर्णन किया।)

जोगिया जी छाइ रह्या परदेस।।टेक।।
जबका बिछड़्या फेर न मिलिया, बहोरि न दियो संदेस।
या तन ऊपरि भसम रमाऊँ, खोर करूँ सिर केस।

भगवाँ भेख धरूँ तुम कारण, ढूँढत च्यारूँ देस।
मीराँ के प्रभु राम मिलण कूँ, जीवनि जनम अनेस।।70।।

(जबका : तब से अर्थात् परदेश जाने के समय से, फेर : फिर, बहोरि : फिर कभी, खोर करूँ : कटवा डालूँ, भेख : वेश, अनेस : अनेक।)

देह्यातना

राग पीलू

रमइया बिनि रह्योइ न जाय।।टेक।।
खान पान मोहि फीको सो लागै, नैणा रहे मुरझाइ।
बार बार मैं अरज करत हूँ, रैण गई दिन जाय।
मीराँ कहै हरि तुम मिलियाँ बिनि, तरस तरस तन जाइ।।71।।

(फीको : बेस्वाद का, मुरझाइ : शिथिल पड़ गये।)

राग जोगिया

हेरी मैं दरद दिवाणी होइ, दरद न जाणै मेरो कोइ।।टेक।।
घायल की गति घाइल जाणै, की जिण लाई होइ।
जौहरि की गति जौहरी जाणै, की जिन जौहर होइ।
सूली ऊपरि सेझ हमारी, सोवणा किस विध होइ।
गगन मंडल पै सेज पिया की, किस विध मिलणा होइ।
दरद की मारी बन बन डोलूँ, बैद मिल्या नहिं कोइ।
मीराँ की प्रभु पीर मिटेगी, जद बैद साँवलिया होइ।।72।।

(जिन : जिसमें, जौहर : गुण, सेझ : सेज, शय्या, सोवणा : सोना, जद : जब।)

शब्द

पीया बिनि रह्योइ न जाइ।।टेक।।
तन मन मेरो पिया पर वारूँ, बार बार बल जाइ।
निस दिन जोऊँ बाट पिया की, कब रे मिलोगे आइ।
मीराँ के प्रभु आस तुमारी, लीज्यौ कंठ लगाइ।।73।।

(मेरो : अपना, वारूँ : न्यौछावर करूँ, बल जाइ : बलिहारी जाती हूँ।)

राग माँड

नातो नाम को मोसूँ तनक न तोड़्यो जाइ।।टेक।।
पानाँ ज्यूँ पीली पड़ी रे, लोक कहें पिंड रोग।
छाने लाँघण मैं किया रे, राम मिलण के जोग।
बावल बैद बुलाइया रे, पकड़ दिखाई म्हाँरी बाँह।
मूरखि बैद मरम नहिं जाणै, करक कलेजा माँह।
जा बैदा घरि आपणे रे, मेरो नाँव न लेइ।
मैं तो दाघी विरह की रे, तूँ काहे कूँ दारू देइ।
माँस गले गल छीजिया रे, करक रह्या गल़ आहि।
आँगलियाँ रो मूँदड़ो, म्हारे श्रावण लागी बाँहिं।
रहो रहो पापी पपीहा रे, पिव को नाम न लेइ।
जे कोइ विरहणि साम्हले, (सजनी) पिव कारण जिव देइ।
खिण मंदिर खिण आगणै रे, खिण खिण ठाढ़ी होइ।
घायल ज्यूँ घूमूँ सदा री, म्हाँरी बिथा न बूझै कोइ।
काढ़ि कलेजो मैं धरूँ रे, कौवा तू ले जाइ।
ज्याँ देसाँ म्हाँरो पिव बसै, (सजनी) वे देखै तू खाइ।
म्हाँरे नातो नाँव को रे, और न नातो कोइ।
मीराँ व्याकुल विरहणी रे, पिया दरसण दीजो मोइ।।74।।

(तनक : तनिक, पानाँ : पत्ते, पिंड रोग : पांडु रोग, छाने : छिपकर, लाँघण : उपवास, व्रत, जोग : योग्य, निमित्त, बावल : बाबा ने, मरम :

भेद, रहस्य, दाघी : जली हुई, छीजिया : घटा हुआ, मूँदड़ो : अँगूठी, जिव देइ : प्राण त्याग देगी, खिण : क्षण।)

राग होली

रमैया बिन नींद न आवै।
नींद न आवे बिरह सतावे, प्रेम की आँच ढुलावै।।टेक।।
बिन पिया जोत मंदिर अँधियारो, दीपक दाय न आवै।
पिया बिन मेरी सेज अलूनी, जागत रैण बिहावै।
पिया कब रे घर आवै।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणावै।
घुमँट घटा ऊलर होइ आई, दामिन दमक डरावै।
नैन झर लावै।
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, बेदन कूण बुतावै।
बिरह नागण मोरी काया डसी है, लहर लहर जिव जावै।
जड़ी घस लावै।
कोहै सख सहेली सजनी, पिया कूँ आन मिलावै।
मीराँ कूँ प्रभु कब रे मिलोगे, मन मोहन मोहि भावै।
कबै हँस कर बतलावै।।75।।

(पिया जोत : प्रिय की ज्योति, दाय : पसन्द, अलूनी : फीकी, असुंदर, बिहावै : बिताती है, बुतावै : शांत करे।)

नींदलड़ी नहिं आवै सारी रात, किस बिधि होइ परभात।।टेक।।
चमक उठी सुपने सुध भूली, चन्द्रकला न सोहात।
तलफ तलफ जिव जाय हमारो, कब रे मिले दीनानाथ।
भइहूँ दीवानी तन सुध भूली, कोई न जानी म्हाँरी बात।
मीराँ कहै बीती सोइ जानै, मरण जीवण उन हाथ।।76।।

(नींदलड़ी : नींद, चमक : चौंक, चन्द्रकला : चाँद की रोशनी।)

राग सुखसोरठ

पतियाँ मैं कैसे लिखूँ, लिखिही न जाय।।टेक।।
कलम धरत मेरो कर कंपत, हिरदो रहो घर्राई।
बात कहूँ मोहि बात न आवै, नैन रहै झर्राई।
किस विध चरण कमल मैं गहिहौं, सबहि अंग थर्राई।
मीराँ कहै प्रभु गिरधर नागर, सबही दुख बिसराई।।77।।

(लिखिही : लिखी ही, धरत : पकड़ते हो, झर्राई : वेग के साथ आँसू बहा रहे हैं, थर्राई : थर-थर काँप रहे हैं।)

राग होली

होली पिया बिन लागै खारी, सुनो री सखी मेरी प्यारी।।टेक।।
सूनो गाँव देस सब सूनो, सूनी सेज अटारी।
सूनी विरहन पिव बिन डोलै, तज दइ पीव पियारी।
भई हूँ या दुख कारी।
देस विदेस सँदेस न पहुँचै, होय अँदेसा भारी।
गिणताँ गिणताँ घस गईं रेखा, आँगरियाँ की सारी।
अजहूँ नहिं आये मुरारी।
बाजत झाँझ मृदंग मुरलिया, बाज रही इकतारी।
आयो बसंत कंत घर नाहीं, तन में जर भया भारी।
स्याम मन कहा विचारी।
अब तो मेहर करो मुझ ऊपर, चित दे सुणो हमारी।
मीराँ के प्रभु बिलज्यो माधो, जनम जनम की कँवारी।
लगी दरसण की तारी।।78।।

(खारी : फीकी, कारी : काली पड़ गयी हूँ, अँदेसा : अंदेशा, जर : ज्वर, ताप, तारी : ध्यान।)

होली पिया बिन मोहिं न भावै, घर आँगण न सुहावे।।टेक।।
दीपक जोय कहा करूँ हेली, पिय परदेस रहावे।
सूनी सेज जहर ज्यूँ लागे, सुसक सुसक जिय जावे।
नींद नहिं आवे।
कब की ठाढ़ी मैं मग जोऊँ, निसदिन बिरह सतावे।
कहा कहूँ कछु कहत न आवे, हिवड़ो अति अकुलावे।
पिया कब दरस दिखावे।
ऐसा है कोई परम सनेही, तुरत सँदेसो लावे।
वा बिरियाँ कब होसी मोकूँ, हँस कर निकट बुलावे।
मीराँ मिल होली गावे।।79।।

(जोय : जलाकर, बिरियाँ : अवसर, मौका।)

किण संग खेलूँ होली, पिया तज गये हैं अकेली।।टेक।।
माणिक मोती सब हम छोड़े, गल में पहनी सेली।
भोजन भवन भलो नहि लागै, पिया कारण भई गेली।
मुझे दूरी क्यूँ म्हेली।
अब तुम प्रीत और सूँ जोड़ी, हमसे करी क्यूँ पहेली।
बहु दिन बीते अजहुँ न आये, लग रही ताला बेली।
किण बिलमाये हेली।
स्याम बिना जियड़ो मुरझावे, जैसे जल बिन बेली।
मीराँ कूँ प्रभु दरसण दीज्यो, जनम जनम की चेली।
दरस बिन खड़ी दुहेली।।80।।

(गेली : पगली, म्हेली : डाल रखा है, पहेली : आरंभ में, ताला बेली : बेचैनी, जियड़ो : प्राण, दुहेली : दुखी।)

राग सावन

मतवारो बादर आए रे, हरि को सनेसो कबहुँ न लाए रे।।टेक।।
दादर मोर पपइया बोलै, कोयल सबद सुणाए रे।
(इक) कारी अँधियारी बिजरी चमकै, बिरहणि अति डरपाए रे।
(इक) गाजै बाजै पवन मधुरिया, मेहा अति झड़ लाए रे।
(इक) कारी नाग बिरह अतिजारी, मीराँ मन हरि भाए रे।।81।।

(सनेसो : संदेशा, गाजै : मेघ गरजता है, मेहा : बादल, मेघ, भाए : सुहाय।)

राग मलार

बादल देख डरी हो स्याम मैं बादल देख डरी।।टेक।।
काली पीली घट ऊमटी, बरस्यो एक घरी।
जित जाऊँ तित पाणी पाणी हुई हुई भोम हरी।
जाका पिया परदेस बसत है, भीजूँ बहार खरी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी कीज्यौ प्रीत खरी।।82।।

(काली पीली : घनघोर, ऊमटी : घिर आई, उमड़ी, पाणी : पानी, भोम : पृथ्वी, जाका : जिसका, बहार : बाहर।)

विरहोद्‌गार

राग सावन

रे पपइया प्यारे कब को बैर चितार्‌यौ।।टेक।।
मैं सूती छी अपने भवन में, पिय पिय करत पुकार्‌यो।
दाध्या ऊपर लूण लगायो, हिवड़ो करवत सार्‌यो।
उठि बैठो वा वृच्छ की डाली, बोल बोल कंठ सार्‌यो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित धार्‌यो।।८३।।

(पपइया : पपीहा, चितार्‌यौ : याद किया, करवत : आरा, सार्‌यो : चला दिया, कंठ सार्‌यो : कंठ फाड़कर, धार्‌यो : लगाया।)

राग सावनी कल्याण

पपइया रे पिय की वाणि न बोल।।टेक।।
सुणि पावेली बिरहणी रे, थारो रालैली आँख मरोड़।
चाँच कटाऊँ पपइया रे, ऊपरि कालर लूण।
पिव मेरा मैं पीव की रे, तू पिव कहै स कूण।
थारा सबद सुहावण रे, जो पिव मेला आज।
चाँच मढाऊँ थारी सोवनी रे, तू मेरे सिरताज।
प्रीतम कूँ पतियाँ लिखूँ, कउवा तू ले जाइ।
जाइ प्रीतमजी सूँ यूँ कहै रे, थाँरी बिरहणि धान न खाइ।
मीराँ दासी व्याकुली रे, पिव पिव करत बिहाइ।
बेगि मिलो प्रभु अंतरजामी, तुम बिनि रह्योही न जाइ।।84।।

(पावेली : पायेगी, चाँच : चोंच, लूण : नमक, कूण : कौन, सोवनी : सोने से, सिरताज : आदरणीय, सरताज, धान : धान्य।)

राग सारंग

हे मेरो मन मोहना।
आयो नहीं सखी री, हे मेरो.।।टेक।।
कैं कहुँ काज किया संतन का, कैं कहुँ गैल भुलावना।
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, लाग्यो है बिरह सतावना।
मीराँ दासी दरसण प्यासी, हरि चरणाँ चित लावणा।।85।।

(कैं : या तो, कहुँ : कहीं पर, गैल : मार्ग, रास्ता, भुलावना : भूल गया, सतावना : सताने, लावणा : लगाना है।)

राग बागेश्वरी

मैं बिरहणि बैठी जागूँ, गत सब सोवै री आली।।टेक।।
बिरहणि बैठी रंगमहल में मोतियन की लड़ पोवै।
इक बिरहणि हम ऐसी देखी, अँसुवन की माला पोवै।
तारा गिण गिण रैण बिहानी, सुख की घड़ी कब आवै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल के बिछुड़ न जावै।।86।।

(जागूँ : जगती हूँ, पोवै : पिरोती है, बिहानी : बीती, बीत गयी।)

राग आनन्द भैरो

सखी मेरी नींद नसानी हो।
पिय को पंथ निहारत, सिगरी रैण बिहानी हो।।टेक।।
सब सखियन मिली सीख दई, मन एक न मानी हो।
बिनि देख्याँ कल नाहिं पड़त, जिय ऐसी ठानी हो।
अँगि अँगि व्याकुल भई, मुखि पिय पिय बानी हो।
अन्तर वेदन विरह की, वह पीड़ न जानी हो।
ज्यूँ चातक घन कूँ रटै, मछरी जिमि पानी हो।
मीराँ व्याकुल बिरहणी, सुध बुध बिसरानी हो।।87।।

(नसानी : नष्ट हो गयी, बिहानी : बीत गयी, मानी : पसंद आयी, ठानी : निश्चय कर लिया है, वेदन : वेदना, बिसरानी : भूल गयी।)

जोगिया री सूरत मन में बसी।।टेक।।
नित प्रति ध्यान धरत हूँ दिल में, निस दिन होत कुसी।
कहा करूँ कित जाऊँ मोरी सजनी, मानो सरप डसी।
मीराँ कहे प्रभु कब रे मिलोगे, प्रीत रसीली बसी।।88।।

(कुसी : खुशी, सरप डसी : सर्प विष से प्रभावित हूँ, रसीली : आनन्दमयी।)

प्रभु बिनि ना सरै माई।
मेरा प्राण निकस्या जात, हरी बिन ना सरै माई।।टेक।।
कमठ दादुर कसत जल में, जल से उपजाई।
मीन जल से बाहर कीना, तुरत मर जाई।
काठ लकरी बन परी, काठ घुन खाई।
ले अगन प्रभु डार आये, भसम हो जाई।
बन बन ढूँढत मैं फिरी, आली सुधि नहीं पाई।
एक बेर दरसण दीजै, सब कसर मिटि जाई।
पात ज्यूँ पीरी परी, अरू विपत तन छाई।
दास मीराँ लाल गिरधर, मिल्या सुख छाई।।89।।

(सरै : काम चलता है, कमठ : कछुवा, दादुर : मेंढक, छाई : हो जाय।)

राग भैरवी

मैं हरि बिनि क्यूँ जिबूँ री माइ।।टेक।।
पिय कारण बौरी भई, ज्यूँ काठहिं घुन खाइ।
ओखद मूल न संचरे, मोहि लाग्यो बौराइ।
कमठ दादुर बसत जल में, जलहि तैं उपजाइ।
मीन जल के बिछुरै तन, तलफि करि मरि जाइ।
पिय ढूँढण बन बन गई, कहुँ मुरली धुन पाइ।
मीराँ के प्रभु लाल गिरधर, मिलि गये सुखदाइ।।90।।

(ओखद : औषधि, मूल : जड़ी, संचरे : कारगर होती है, बौराइ : पागलपन, सुखदाइ : सुखदायक।)

राग पीलू

राम मिलण के काज सखी, मेरे आरति उर में जागी री।।टेक।।
तलफत तलफत कल न परत है, बिरह बाण उरि लागी री।

निसदिन पंथ निहारूँ पीव को, पलकन पर भरि लागी री।
पीव पीव मैं रटूँ रात दिन, दूजी सुधि बुधि भागी री।
बिरह भवंग मेरो डस्यो है कलेजो, लहरि हलाहल जागी री।
मेरी आरति मेटि गुसाईं, आइ मिलौ मोहिं सागी री।
मीराँ व्याकुल अति उकलाणी, पिया की उमंग अति लागी री।।91।।

(आरति : चाह, जागी : उत्पन्न हुई, भुवंग : सर्प, हलाहल : विष, सागी : जल्दी।)

राग खंभावती

राम नाम मेरे मन बसियो, राम रसियो रिझाऊँ, ए माय।
मंद भागिण करम अभागिण, कीरत कैसे गाऊँ, ए माय।
बिरह पिंजर की बाड़ सखी री, उठकर जी हुलसाऊँ, ए माय।
मन कूमार सजूँ सतगुरु सूँ दुरमत दूर गमाऊँ, ए माय।
डाको नाम सुरत की डोरी, कड़ियाँ प्रेम चढ़ाऊँ, ए माय।
ज्ञान को ढोल बन्यो अति भारी, मगन होय गुण गाऊँ, ए माय।
तन करूँ ताल मन करूँ मोरचंग, सोती सुरत जगाऊँ, ए माय।
निरत करूँ मैं प्रीतम आगे, तौ अमरापुर पाऊँ, ए माय।
मो अबला पर किरपा कीज्यो, गुण गोविन्द के गाऊँ, ए माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रज चरणाँ की पाऊँ, ए माय।।92।।

(बसियो : बस गया है, पिंजर : शरीर, देह, गमाऊँ : गुम कर दूँ, डाको : डंका, अमरापुर : अमरत्व की स्थिति।)

विरह-निवेदन

राग पीलू

स्याम सुंदर पर वार।
जीवड़ा मैं वार डारूँगी, स्याम सुंदर.।।टेक।।
तेरे कारण जोग धारणा, लोक लाज कुल डार।

तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, नैन चलत दोऊँ वार।
कहा करूँ कित जाऊँ मेरी सजनी, कठिन बिरह की धार।
मीराँ कहै प्रभु कब रे मिलोगे, तुम चरणाँ आधार।।93।।

(धारणा : धारण करूँगी, डार : उपेक्षा करके, दोऊँ वार : दोनों समय, सुबह-शाम, धार : धारा, वेग।)

करणाँ सुणि स्याम मेरी।
मैं तो होइ रही चेरी तेरी।।टेक।।
दरसण कारण भई बावरी, बिरह बिथा तन घेरी।
तेरे कारण जोगण हूँगी, दूँगी नग्र बिच फेरी।
कुंज सब हेरी हेरी।
अंग भभूत गले म्रिग छाला, योगन भसम करूँ री।
अजहूँ न मिल्या राम अविनासी, बन बन बीच फिरूँ री।
रोऊँ नित टेरी टेरी।
जन मीराँ कूँ गिरधर मिलिया, दुख मेटण सुख भेरी।
रूम रूम साता भइ उर में, मिटि गई फेरा फेरी।।94।।

(करणाँ : करुण प्रार्थना, सुणि : सुनो, टेरी टेरी : पुकार-पुकारकर, भेरी : पहुँचाने वाले, साता : शांति, फेरा फेरी : आवागमन।)

पिया अब घर आज्यो मेरे, तुम मोरे हूँ तोरे।।टेक।।
मैं जन तेरा पंथ निहारूँ, मारग चितवत तोरे।
अवध वदीती अजहूँ न आये, दुतियन सूँ नेह जोरे।
मीराँ कहे प्रभु कब रे मिलोगे, दरसन बिन दिन टोरे।।95।।

(आज्यो : आ जाओ, जन : दासी, अवध : अवधि, वदीती : बीत गयी, दुतियन सूँ : दूसरों से, टोरे : कठिन हो गया।)

राग देस

भवन पति तुम घरि आज्यो हो।
बिथा लगी तन माहिने (म्हारी), तपत बुझाज्यो हो।।टेक।।
रोवत रोवत डोलाँत, सब रैण बिहावै हो।
भूख गई निदरा गई, पापी जीव ना जावै हो।
दुखिया कै सुखिया करो, मोहि दरसण दीजै हो।
मीराँ व्याकुल बिरहणी, अब विलम न कीजै हो।।96।।

(माहिने : भीतर, तपत : ज्वाला, बिहावै : बीत जाती है, निदरा : नींद।)

जोगी म्हाँने, दरस दियाँ सुख होइ।
नातरि दुख जग माहि जीवड़ो, निसदिन झूरै तोइ।
दरद दिवानी भई बावरी, डोली सबही देस।
मीराँ दासी भई है पंडर, पलट्या काला केस।।97।।

(दियाँ : देने से, होइ : होगा, नातरि : नहीं तो, तोइ : तेरे लिए, पलट्या : बदल गये।)

म्हारे घर रमतो ही आईं रे तू जोगिया।
कानाँ बिच कुंडल गले बिच सेली, अंग भभूत रमाई रे।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, ग्रिह अँगणो न सुहाई रे।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, दरसण द्यौ मोकूँ आई रे।।98।।

(कानाँ : कानों में, ग्रिह : घर, द्यौ : दो, आई : आकर।)

राग टोड़ी

आवो मन मोहना जी जोऊँ थाँरी बाट।।टेक।।
खान पान मोहि नेक न भावै, नैण न लागे कपाट।

तुम आयाँ विनि सुख नहिं मेरे, दिल में बोहोत उच्चाट।
मीराँ कहै मैं भई रावरी, छाँड़ो नाहिं निराट।।99।।

(बाट : राह, नेक : जरा भी, कपाट : द्वार, आयाँ विनि : आये बिना ही, उच्चाट : व्याकुल, रावरी : आपकी।)

राग बिलावल

आवो मनमोहनाजी मीठा थाँरो बोल।।टेक।।
बालपनाँ की प्रीत रमइयाजी, कदे नाहिं आयो थाँरो तोल।
दरसण बिन मोहि जक न परत है, चित मेरो डाँवाडोल।
मीराँ कहै मैं भई रावरी, कहो तो बजाऊँ ढोल।।100।।

(कदे : कभी, नाहिं आयो तोल : समझ में नहीं आया, जक : चैन, डाँवाडोल : चंचल, व्यग्र।)

राग आसावरी

प्यारे दरसण दीज्यो आय, तुम बिन रह्यो न जाय।।टेक।।
ज़ल बिन कँवल चंद बिन रजनी, ऐसे तुम देख्याँ बिन सजनी।
याकुल व्याकुल फिरूँ रैण दिन, बिरह कलेजो खाय।
दिवस न भूख नींद नहिं रैणा, मुखसूँ कथत न आवै बैणा।
कहा कहूँ कुछ कहत न आवै, मिल कर तपत बुझाय।
क्यूँ तरसावो अंतरजामी, आय मिलो किरपा कर स्वामी।
मीराँ दासी जनम जनम की, परी तुम्हारे पाय।।101।।

(याकुल : व्याकुल, बैणा : वचन।)

राग पहाड़ी

घड़ी एक नहिं आवड़ें, तुम दरसण बिन मोय।

तुम हो मेरे प्राण जी, कासूँ जीवण होय।
धान न भावै नींद न आवै, बिरह सतावै मोहि।
घायल सी घूमत फिरूँ रे, मेरो दरद न जाणै कोय।
दिवस तो खाय गमाइयो रे, रैण गमाई सोइ।
प्राण गमायो झूरताँ रे, नैण गमाया रोइ।
जो मैं ऐसो जाणती रे, प्रीत कियाँ दुख होइ।
नगर ढँढोरा फेरती रे, प्रीत करो मत कोइ।
पंथ निहारो डगर बुहारूँ, ऊभी मारग जोइ।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, तुम मिलियाँ सुख होइ।।102।।

(कासूँ : किस प्रकार से, धान : अन्न, गमाइयो : व्यतीत होता है, बीतता है, झूरताँ : लोकावेग में ही।)

राग देस

दरस बिन दूखण लागै नैण।।टेक।।
जब के तुम बिछुरे प्रभु मोरे, कबहुँ न पायो चैन।
सबद सुणत मेरी छतियाँ काँपै, मीठे मीठे बैन।
बिरह कथा कासूँ कहूँ सजनी, बह गई करवत अैन।
कल न परत तल हरि मग जोवत, भई छमासी रैण।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, दुख मेटण सुख दैण।।103।।

(सुणत : याद आते ही, छतियाँ : छाती, अैन : पूरी-पूरी, मेटण : मेटने वाले, दैण : देने वाला।)

धुन लावनी

तुमरे कारण सब सुख छाड्या, अब मोहि क्यूँ तरसावौ हो।।टेक।।
बिरह बिथा लागी उर अन्तर, सो तुम आप बुझावौ हो।
अब छोड़त नहिं वणै प्रभूजी, हँसि करि तुरत बुलावौ हो।
मीराँ दासी जनम जनम की, अंग से अंग लगावौ हो।।104।।

(छाड्या : छोड़ दिया, छोड़त नाहिं वणै : छोड़ देने से काम नहीं बनता।)

राग अलैया

तूँ नागर नंदकुमार, तोसों लाग्यो नैहरा।।टेक।।
मुरली तेरी मन हर्‌यो, बिसर्‌यौ ग्रिह व्यौहार।
जब तैं स्रवननि धुनि परी, ग्रिह अँगना न सुहाइ।
पारधि ज्यूँ चूकै नहीं, मृगी वेधि दई आइ।
पानी पीर न जाणई, मीन तलफि मरि जाइ।
रसिक मधुप के मरम को, नहिं समुझत कँवल सुभाइ।
दीपक को जु दया नहिं, उड़ि उड़ि मरत पतंग।
मीराँ प्रभु गिरधर मिले, (जैसे) पाणी मिल गयो रंग।।105।।

(नागर : चतुर, नैहरा : स्नेह, प्रेमभाव, तैं : से, पारधि : व्याध, वेधि दई : तीर मार दिया।)

राग प्रभाती

म्हाँरो जनम मरन को साथी, थाँने नहिं बिसरूँ दिन राती।।टेक।।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जानत मेरी छाती।
ऊँची चढ़ चढ़ पंथ निहारूँ, रोय अखियाँ राती।
यो संसार सकल जग झूँठो, झूँठा कुल रा न्याती।
दोउ कर जोड्याँ अरज करत हूँ, सुण लीज्यो मेरी बाती।
यो मन मेरो बड़ो हरामी, ज्यूँ मदमातो हाथी।
सतगुरु दस्त धर्‌यो सिर ऊपर, अंकुस दे समझाती।
पल पल तेरा रूप निहारूँ, निरख निरख सुख पाती।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरि चरणाँ चित राती।।106।।

(अखियाँ राती : आँखें लाल-लाल, न्याती : संबंधी, हरामी : दुष्ट, दस्त : हाथ, राती : लगा हुआ।)

राग पूरिया कल्याण

सजन सुध ज्यूँ जाणे त्यूँ लीजे हो।।टेक।।
तुम बिन मोरे और न कोई, कृपा रावरी कीजै हो।
दिन नहिं भूख रैण नहिं निदरा, यूँ तन पलपल छीजै हो।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मिल बिछड़न मत कीजै हो।।107।।

(रावरी : आपकी, निदरा : निद्रा, पलपल : बराबर, छीजै : दुबला होता जाता है।)

राग प्रभाती

राम मिलण रो घणो उमावो, नित उठ जोऊँ वाटड़ियाँ।।टेक।।
दरस बिना मोहिं कछु न सुहावै, जक न पड़त है आँखड़ियाँ।
तलफत तलफत बहु दिन बीता, पड़ी विरह की पाशड़ियाँ।
अब तो बेगि दया करि साहिब, मैं तो तुम्हारी दासड़ियाँ।
नैण दुखी दरसण कूँ तरसैं, नाभिन बैठे साँसड़ियाँ।
राति दिवस यह आरति मेरे, कब हरि राखै पासड़ियाँ।
लागी लगनि छूटण की नाहीं, जब क्यूँ कीजै आँटड़ियाँ।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, पूरौ मन की आसड़ियाँ।।108।।

(घणो : गहन, घना, उमावो : लालसा, उमंग, वाटड़ियाँ : बाट, मार्ग, जक : चैन, पाशड़ियाँ : फाँसी, पासड़ियाँ : निकट, पास, आँटड़ियाँ : उपेक्षा, बैर, आसड़ियाँ : आशायें।)

राग सिंध भैरवी

म्हाँरे घर होता जाज्यो राज।।टेक।।
अब के जिन टाला दे जावो, सिर पर राखूँ बिराज।
म्हे तो जनम जनम की दासी, थे म्हाँका सिरताज।
पावणड़ा म्हाँके भलाँ ही पधारो, सब ही सुधारण काज।
म्हे तो बुरी छाँ थाँके भलो छै घणेरी, तुम हो एक रसराज।

थाँमे हम सबहिन की चिंता तुम, सबके हो गरीब निवाज।
सबके मुकट सिरोमनि सिर पर, मानूँ पुण्य की पाज।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बाँह गहे की लाज।।109।।

(राज : आप, जिन टाला दे जावो : टाल जाओ, राखूँ बिराज : आदर के साथ बिठा रखूँगी, थे : आप।)

कबहूँ मिलेगो मोहि आई, रे तूँ जोगिया।।टेक।।
तेरे कारण जोग लियो है, घरि-घरि अलख जगाई।
दिवस न भूख रैण नहिं निदरा, तुम बिन कछु न सुहाई।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, मिलिकरि तपति बुझाई।।110।।

(कबहूँ : कभी तो, तपति : ज्वाला।)

राम भीम पलासी

गोबिंद कबहुँ मिलै पिया मेरा।।टेक।।
चरण कँवल कूँ हँसि-हँसि देखूँ राखूँ नैणाँ नेरा।
निरखण कूँ मोहि चाव घणेरो, कब देखूँ मुख तेरा।
व्याकुल प्राण धरत नहिं धीरज, मिलि तूँ मीत सबेरा।
मीराँ के प्रभु हरि गिरधर नागर, ताप तपन बहुतेरा।।111।।

(नैणाँ : नेत्रों के, नेरा : निकट, निरखण कूँ : देखने की, चाव : चाह, घणेरो : बड़ा, उत्कट, ताप : तपन, अन्तःज्वाला।)

राग कोशी

म्हाँरी सुध ज्यूँ जानो ज्यूँ लीजो जी।।टेक।।
पल पल भीतर पंथ निहारूँ, दरसण म्हाँने दीजो जी।
मैं तो हूँ बहु औगणहारी, औगण चित मत दीजो जी।

मैं तो दासी थाँरे चरणकँवल की, मिल बिछुरन मत कीजो जी।
मीराँ तो सतगुर जी सरणे, हरि चरणाँ चित दीजो जी।।112।।

(औगणहारी : अवगुणों से भरी।)

राग टोड़ी

म्हाँरे घर आज्यो प्रीतम प्यारा, तुम बिन सब जग खारा।।टेक।।
तन मन धन सब भेंट करूँ, ओ भजन करूँ मैं थाँरा।
तुम गुणवंत बड़े गुणसागर, मैं हूँ जी औगणहारा।
मैं निगुणी गुण एकौ नाहीं, तुझमें जी गुण सारा।
मीराँ कहै प्रभु कबहिं मिलौगे, बिन दरसण दुखियारा।।113।।

(खारा : फीका, नीरस, थाँरा : तुम्हारा, दुखियारा : दुखी।)

वारी वारी हो राम हूँ वारी, तुम आज्या गली हमारी।।टेक।।
तुम देख्याँ बिन कल न पड़त है, जाऊँ बाट तुम्हारी।
कूण सखी सूँ तुम रँग राते, हम सूँ अधिक पियारी।
किरपा कर मोहिं दरसण दीज्यो, सब तकसीर बिसारी।
तुम सरणागत परम दयाला, भवजल तार मुरारी।
मीराँ दासी तुम चरणन की, बार बार बलिहारी।।114।।

(वारी वारी : बलिहारी जाऊँ, आज्यो : आ जाओ, तकसीर : अपराध।)

तुम आज्यो जी रामा, आवत आस्याँ सामा।।टेक।।
तुम मिलियाँ मैं बहु सुख पाऊँ, सरैं मनोरथ कामा।
तुम बिच हम बिच अंतर नाहीं, जैसे सूरज घामा।
मीराँ मन के और न माने, चाहे सुन्दर स्यामा।।115।।

(आस्याँ : आयेंगी, सामा : मीठी-मीठी बातें, सरैं : पूर्ण होते हैं।)

राग देस

पिया मोहिं दरसण दीजै हो।
बेर बेर मैं टेरहूँ, अहे क्रिपा कीजै हो।।टेक।।
जेठ महीने जल बिना, पंछी दुख होई, हो।
मोर आसाढ़ाँ कुरलहे, घन चात्रग सोई, हो।
सावण मैं झड़ लागियौ, सखि तीजाँ खेलै, हो।
भादरवै नदिया वहै, दूरी जिन मेलै, हो।
सीप स्वाति ही झेलती, आसोजाँ सोई, हो।
देव काती में पूजहे, मेरे तुम होई, हो।
मगसर ठंड बहोंती पड़ै, मोहि वेगि सम्हालो, हो।
पोस महीं पाला घणा, अवही तुम न्हालो, हो।
महा महीं बसंत पंचमी, फागाँ सब गावै, हो।
फागुण फागा खेलहैं, वणराइ जलावै, हो।
चैत चित्त में ऊपजी, दरसण तुम दीजै, हो।
बैसाख वणराइ फूलवै, कोइल कुरलीजै, हो।
काग उड़ावत दिन गया, बूझूँ पिंडत जोसी, हो।
मीराँ विरहणि व्याकुली, दरसण कब होसी, हो।।116।।

(बेर बेर : बार-बार, टेरहूँ : पुकारती रहती हूँ, क्रिपा : कृपा, कुरलहे : करुण शब्द करते हैं, भादरवै : भादों का महीना, आसोजाँ : आश्विन मास में भी, सोई हो : वही होता है, पूजहे : पूजते हैं, बहोंती : बहुत ही, पाला : शीत, पोस महीं : पौष मास में, न्हालो : आकर देख जाओ, वणराई : वनराज, फागाँ : होली के गीत, होसी : होगा।)

जोगिया जी आवो न या देस।।टेक।।
नैणज देखूँ नाथ मेरो, ध्याइ करूँ आदेस।
आया सावण मास सजनी, भरे जल थल ताल।
रावल कुण विलमाइ राखो, बिरहनि है बेहाल।
बीछड़ियाँ कोइ भौ भयो (रे जोगी), ऐ दिन अहला जाय।

एक बेरी देह फेरी, नगर हमारे आइ।
वा मूरति मेरे मन बसे (रे जोगी), छिनभरि रह्यौइ न जाइ।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, दरसण द्यौ हरि आइ।।117।।

(नैणज : जिससे नेत्रों द्वारा, ध्याइ : ध्यान करके, आदेस : निवेदन, रावल : मेरे राजा, कुण : किसने, विलमाइ : लुभाकर रोके रखा, कोइ भौ : एक युग का ही लंबा समय, बेरी : बार।)

जोगिया ने कहियो रे आदेस।
आऊँगी मैं नाहिं रहूँ रे, कर जटाधारी भेस।
चीर को फाड़ूँ कंथा पहिरूँ लेऊँगी उपदेश।
गिणते गिणते घिस गई रे, मेरी उँगलियों की रेख।
मुद्रा माला भेष लूँ रे खप्पड़ लेउँ हाथ।
जोगिन होय जग ढूँढसूँ रें, रावलिया के साथ।
प्राण हमारा वहाँ बसत है, यहाँ तो खाली खोड़।
मात पिता परिवार सूँ रे, रही तिनका तोड़।
पाँच पचीसो बस किये, मेरा पल्ला न पकड़ै कोय।
मीराँ व्याकुल विरहनी, कोइ आय मिलावै मोय।
माला मुदरा मेखला रे बाला, खप्पर लूँगी हाथ।
जोगणि होइ जुग ढूँढसूँ रे, म्हाँरा रावलिया री साथ।
सावण आवण कह गया बाला, कर गया कौल अनेक।
गिणता गिणता घिस गई रे म्हाराँ आँगलिया री रेख।
पीव कारण पीली पड़ी बाला, जोबन वाली बेस।
दास मीराँ राम भजि कै, तन मन कीन्हौं पेस।।118।।

(कहियो : कह देना, मुदरा : तिलक, मेखला : योगियों की करधनी, बाला : वल्लभ, कौल : करार, जोबन वाली : नवीन।)

राग प्रभाती

थे तो पलक उघाड़ो दीनानाथ,
मैं हाजिर नाजिर कदकी खड़ी।।टेक।।
साजनियाँ दुसमण होय बैठ्या सबने लगूँ कड़ी।
तुम बिन साजन कोइ नहीं है, डिगी नाव मेरी समंद अड़ी।
दिन नहिं चैन रैण नहिं निदरा, सूखूँ खड़ी खड़ी।
वाण विरह का लग्या हिये में, भूलूँ न एक घड़ी।
पत्थर की तो अहिल्या तारी, बन के बीच पड़ी।
कहा झबो मीराँ में कहिये, सौ पर एक घड़ी।।119।।

(कदकी : कभी से, दुसमण : दुश्मन, शत्रु, डिगी : चलकर।)

राग मारवा

इण सरवरियाँ री पाल मीराँबाई साँपड़े।।टेक।।
साँपड़ किया असनान, सूरज सामी जप करे।
होय बिरंगी नार, डगराँ बिच क्यों खड़ी।
काँई थारो पीहर दूर, घराँ सासू लड़ी।
चल्यो जारे असल गुँवार, तनै मेरी के पड़ी।
गुरु म्हाँरा दीन दयाल, हीराँ रा पाखरी।
दियो म्हाने ग्यान बताया, संगत कर साधरी।
खोई कुल की लाज, मुकुंद थाँरे कारणे।
वेगही लीज्यो सँभाल, मीराँ पड़ी वारणे।।120।।

(साँपड़े : संपादन करती हूँ, साँपड़ : निबटकर, बिरंगी : विचित्र, डगराँ : राह, मार्ग, गुँवार : मूर्ख।)

राग दरबारी कान्हरा

पिय विनि सूनौ छै म्हाँरो देस।।टेक।।
ऐसा है कोई पीव कूँ मिलावै, तन मन करूँ सब पेस।

तेरे कारण बन बन डोलूँ, कर जोगण को भेस।
अवधि वदीती अजूँ न आए, पंडर होइ गया केस।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, तजि दिये नगर नरेस।।121।।

(सूनौ : शून्य, निर्जन, अजूँ : आज तक, पंडर : श्वेत।)

वशीकरण

राग कोसी

कोई कहियाँ रे प्रभु आवन की।
आवन की मनभावन की, कोई.।।टेक।।
आप न आवै लिख नहिं भेजै, वाँण पड़ी ललचावन की।
ए दोइ नैण कह्यौ नहिं मानै, नदिया बहै जैसे सावन की।
कहा करूँ कछु नहिं बस मेरो, पाँख नहीं उड़ जावन की।
मीराँ कहै प्रभु कब रे मिलोगे, चेरी भइ हूँ तेरे दाँवन की।।122।।

(उड़ जावन : उड़ जाने की, दाँवन : दामन, पल्ला।)

भीजे म्हाँरो दाँवन चीर, सावणियो लूम रह्यो रे।।टेक।।
आप तो जाय बिदेसाँ छाये, जिवड़ो धरत न धीर।
लिख लिख पतियाँ सँदेसा भेजूँ, कब घर आवै म्हाँरो पीव।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, दरसन दो बलवीर।।123।।

(सावणियो : सावन के मेघ, लूम रह्यो : छा रही है, दो : देओ।)

मेरे प्रियतम प्यारे राम कूँ, लिख भेजूँ रे पाती।।टेक।।
स्याम सनेसो कबहुँ न दीन्हौ, जानि बूझ गुझबाती।
डगर बुहारूँ पंथ निहारूँ, जोइ जोइ अखियाँ राती।
राति दिवस मोहि कल न पड़त है, हीयो फटत मेरी छाती।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, पूरव जनम का साथी।।।124।।

(गुझबाती : गूढ़ बात, जोइ जोइ : देखते-देखते।)

राग धानी

मोहि लागी लगन गुरु चरनन की।।टेक।।
चरन बिन कछुवै नाहिं भावै, जग माया सब सपनन की।
भवसागर सब सूखि गयो है, फिकर नहीं मोहिं तरनन की।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आस वही गुरु सरनन की।।125।।

(कछुवै : कुछ भी, सपनन : स्वप्नों, तरनन : पार करने की, सरनन : शरण।)

सद्गुरु से विरह निवेदन

म्हाँरा सतगुर बेगा आज्यो जी, म्हाँरे सुख री सीर बुवाज्यो जी।
तुम बिछड़ियाँ दुख पाऊँ जी, मेरा मन माँही मुरझाऊँ जी।
मैं कोइल ज्यूँ कुरलाऊँ जी, कुछ बाहरि कहि न जणाऊँ जी।
मोहि बाघड़ विरह सतावै जी, कोई कहियाँ पार न पावै जी।
ज्यूँ जल त्याग्या मीना जी, तुम दरसण बिन खीना जी।
ज्यूँ चकवी रैण न भावै जी, वा ऊगो भाण सुहावै जी।
ऊ दिन कबै करोला जी, म्हाँरे आँगण पाँव धरोला जी।
अरज करै मीराँ दासी जी, गुरु पद रज की मैं प्यासी जी।।126।।

(बेगा : शीघ्र, सीर : दूध की पवित्र धारा, बुवाज्यो : बहा दीजियेगा, मुरझाऊँ : उदास बनी रहती हूँ, कहियाँ : कहकर, खीना : क्षीण, भाण : सूर्य।)

सतगुरु म्हाँरी प्रीत निभाज्यो जी।।टेक।।
थे छो म्हारा गुण रा सागर, ओगण म्हारूँ मति जाज्यो जी।
लोकन धीजे (म्हारो) मन न पतीजै, मुखड़ा रा सवद सुणाज्यो जी।
मैं तो दासी जनम जनम की, म्हारे आँगणि रमता आज्यो जी।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, बेड़ो पार लँगाज्यो जी।।127।।

(गुण रा : गुणों के, ओगण : अवगुणों पर, धीजै : प्रतीत करते व संतुष्ट होते हैं, पतीजै : मानता है।)

मिलता जाज्यो हो गुरु ज्ञानी, थाँरी सूरत देखि लुभानी।।टेक।।
मेरो नाम बूझि तुम लीज्यो, मैं हूँ विरह दिवानी।
रात दिवस कल नाहिं परत है, जैसे मीन बिन पानी।
दरस बिना मोहिं कछु न सुहावै, तलफ तलफ मर जानी।
मीराँ नो चरणन की चेरी, सुन लीजे सुखदानी।।128।।

(सुखदानी : सुख पहुँचाने वाली।)

स्याम तेरी आरति लागी हो।
गुरु परतापे पाइया, तन दुरमति भागी हो।।टेक।।
या तन को दियना करों, मनसा करों बाती हो।
तेल भरावों प्रेम का, बारो दिन राती हो।
पाटी पारों ज्ञान की, मति माँग सँवारों हो।
तेरे कारन साँवरे, धन जोबन वारों हो।
या सेजिया बहु रंग की, बहु फूल बिछाये हो।
पंथ मैं जोहौं स्याम का अजहुँ नहिं आये हो।
सावन भादों ऊमड़ो, बरषा रितु आई हो।
भौंह घटा घन घेरि के, नैनन झरि लाई हो।
मात पिता तुमको दियो, तुमही भल जानो हो।
तुम तजि और भतार को, मन में नहिं आनों हो।
तुम प्रभु पूरन ब्रह्म हो, पूरन पद दीजै हो।
मीराँ व्याकुल बिरहनी, अपनी करि लीजै हो।।129।।

(आरति : चाह, परपाते : कृपा द्वारा, दियना : दिया।)

तृतीय खंड

राग दरबारी

तुम सुणौ दयाल म्हाँरी अरजी।।टेक।।
भवसागर में बही जात हूँ, काढ़ो तो थाँरी मरजी।
यौ संसार सगो नहिं कोई, साँचा सगा रघुबरजी।
मात पिता औ कुटम कबीलो, सब मतलब के गरजी।
मीराँ की प्रभु अरजी सुण लो, चरण लगावो थाँरी मरजी।।130।।

(सुणौ : सुनो, काढ़ो : निकालो, पार करो, कुटम : कुटुम्ब, गरजी : स्वार्थी।)

राग सारंग

मैं तो तेरी सरण परी रे रामा, ज्यूँ जाणे त्यूँ तार।।टेक।।
अड़सठ तीरथ भ्रमि भ्रमि आयो, मन नाहीं मानी हार।
या जग में कोई नहिं अपणा, सुणियौ श्रवणमुरार।
मीराँ दासी राम भरोसे, जम का फंदा निवार।।131।।

(सरण : शरण, परी : आ गयी हूँ, श्रवण : सबकी सुनने वाला।)

राग भैरवी

अब मैं सरण तिहारीजी, मोहिं राखो कृपानिधान।।टेक।।
अजामील अपराधी तारे, तारे नीच सदान।

जल डूबत गजराज उबारे, गणिका चढ़ी विमान।
और अधम तारे बहुतेरे, भाखत संत सुजान।
कुबजा नीच भीलणी तारी, जानै सकल जहान।
कहँ लगि कहूँ गिणत नहिं आवै, थकि रहै वेद पुरान।
मीराँ कहै मैं सरण रावली, सुनियो दोनों कान।।132।।

(अजामील : अजामिल एक भक्त, सदान : सदना कसाई जो बाद में भक्त बन गया, गणिका : वेश्या, भीलनी : शबरी, रावली : आपकी।)

राग पहाड़ी

मेरो बेड़ो लगाज्यो पार, प्रभुजी मैं अरज करूँ छूँ।।टेक।।
या भव में मैं बहु दुख पायो, संसा सोग निवार।
अष्ट करम की तलब लगी है, दूर करो दुख भार।
यो संसार सब वह्यो जात है, लख चौरासी री धार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आवागमन निवार।।133।।

(करूँ छूँ : करती हूँ, संसा सोग : संशय व शोक, निवार : दूर करें।)

रावलो बिड़द मोहिं रूढ़ो लागे, पीड़ित पराये प्राण।।टेक।।
सगो सनेही मेरौ और न कोई, बैरी सकल जहान।
ग्राह गह्यो गजराज उबार्‌यो, बूड़ न दियो छे जान।
मीराँ दासी अरज करत है, नहिं जो सहारो आन।।134।।

(रूढ़ो : अच्छा, उत्तम, बैरी : वैरी, शत्रु, जान : प्राण, आन : अन्य, दूसरा।)

राग पीलू

हमने सुणीछै हरि अधम उधारण।

अधम उधारण सब जग तारण, हमने सुणीछै.।।टेक।।
गज की अरजि गरजि उठि ध्यायो, संकट पडयौ तब कष्ट निवारण।
द्रोपत सुता को चीर बधायो, दूसासन को मान मद मारण।
प्रहलाद की प्रतंग्या राखी, हरणाकस नख उद्र बिडारण।
रिख पतनी पर किरपा कीन्हीं बिप्र सुदामाँ की विपति विदारण।
मीराँ के प्रभु मो बंदी परि, एती अबेरि भई किण कारण।।135।।

(सुणीछै : सुना है, उधारण : उद्धार करने वाले, तारण : तारने वाले, गरजि : ललकारकर, निवारण : दूर करने वाले, बधायो : बढ़ा दिया, ध्यायो : दौड़ पड़े, प्रतंग्या : प्रतिज्ञा, विदारण : दूर कर देने वाले, अबेरि : देर।)

राग विहाग

राम मोरी बाँहड़ली जी गहो।।टेक।।
या भव सागर मँझधार में, थेही निभावण हो।
म्हाँ में ओगण घणा छै हो प्रभुजी, थेही सहो तो सहो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, लाज विरद की बहो।।136।।

(बाँहड़ली : बाँह, हाथ, थेही : तुम्हारी, निभावणा : निभाने वाले, घणा छै : बहुत से हैं, बहो : सँभालो, रखो।)

म्हाँरे नैणाँ आगे रहाजो जी, स्याम गोविन्द।।टेक।।
दास कबीर घर बालद जो लाया, नामदेव की छान छवंद।
दास धना को खेत निपजायो, गज की टेर सुनंद।
भीलणी का बेर सुदामा का तन्दुल, भर मुठड़ी बुकंद।
करमाबाई को खींच अरोग्यो, होइ परसण पावंद।
सहस गोप बिच स्याम विराजे, ज्यों तारा बिच चंद।
सब संतों का काज सुधारा, मीराँ सूँ दूर रहंद।।137।।

(बालद : बैल, छान छवंद : छप्पर छा दिया, दास धना : धन्ना भक्त, निपजायो : बो दिया, तन्दुल : चावल, खींच : खिचड़ी, रहंद : रहता है।)

पिया तेरे नाम लुभाणी, हो।।टेक।।
नाम लेत तिरता सुण्या, जैसे पाहण पाणी, हो।
सुकिरत कोई ना कियो, बहु करम कुमाणी, हो।
गणिका कीर पढ़ावताँ, बैकुंठ बसाणी, हो।
अरध नाम कुंजर लियो, वाको अवध घटानी, हो।
गरुड़ छाँड़ि हरि धइया, पसुजूण मिटाणी, हो।
अजामेल से ऊधरे, जम त्रास नसानी, हो।
पुत्र हेत पदवी दई, जग सारे जाणी, हो।
नाम महातम गुरु दियो, परतीत पिछाणी, हो।
मीराँ दासी रावली, अपणी कर जाणी, हो।।138।।

(लुभाणी : लुभाई हुई है, करम कुमाणी : अशुभ कर्म, कीर : तोता, अरध : आधा, कुंजर : हाथी, जूण : योनि, हेत : कारण।)

मुझ अबला ने मोटो नीराँत थई,
सामलो घरेनु म्हाँरे साँचु, रे।।टेक।।
बाली बड़ाऊँ बीठल बर केरी, हार हरी ने म्हाँरो हइये, रे।
चीन माल चतुरभुज चुड़लो, सिद सोनी घरे जइये, रे।
झाँझरिया जगजीवन केरा, किस्न गलाँरी कंठी, रे।
बिछुवा घुंघरा रामनरायण, अनवट अंतरजामी, रे।
पेटी घड़ाउ पुरुसोत्तम केरी, टीकम नाम नूँ तालो, रे।
कूँची कराऊँ करुनानंद केरी, ते माघैणा नूँ मारूँ, रे।
सासर वासो सजीने बैठी, हवे नथी काइ काँचूँ, रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरिनूँ चरणे जाचूँ, रे।।139।।

(नीराँत : भरोसा, थई : हुआ, घरेनु : घर पर, चुड़लो : चूड़ा, गलाँरी : गले की, टीकम : त्रिविक्रम, हवे : अब, नथी : नहीं है, सजीने : सजकर।)

राग सारंग

नंदनंदन बिलमाई, बदराने घेरी माई।।टेक।।
इत घन गरजे उत घन लरजे, चमकत बिज्जु सवाई।
उमड़ घुमड़ चहूँ दिस से आया, पवन चलै पुरवाई।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल सबद सुणाई।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चितलाई।।140।।

(घेरी : चारों ओर से घेर लिया, सवाई : विशेष रूप से, बिज्जु : बिजली, पुरवाई : पुरवा।)

राग कलिंगड़ा

सुनी हो मैं हरि आवन की आवाज।।टेक।।
म्हैल चढ़े चढ़ि जोऊँ मेरी सजनी, अब आवै महाराज।
दादर मोर पपइया बोलै, कोइल मधुरे साज।
उमंग्यो इन्द्र चहूँ दिसि बरसै, दामणि छोड़ी लाज।
धरती रूप नवा नवा धरिया, इन्द्र मिलण कै काज।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, वेग मिलो महाराज।।141।।

(म्हैल : महल, दामणि : बिजली, धरिया : धारण किया।)

राग सोरठ

जोसीड़ा ने लाख बधाई रे, अब घर आये स्याम।।टेक।।
आजि आनंद उमंगि भयो है, जीव लहै सुखधाम।
पाँच सखी मिलि पीव परसि कै, आनंद ठामूँ ठाँम।

बिसरि गई दुख निरखि पिया कूँ सुफल मनोरथ काम।
मीराँ के सुख सागर स्वामी, भवन गवन कियो राम।।142।।

(जोसीड़ा : ज्योतिषी, पाँच सखी : पाँच इन्द्रियाँ, परसि कै : स्वागत किया, ठाँम : जगह, सुफल : सफल पूर्ण, गवन कियो : पधारे।)

राग नट बिलावल

रे साँवलिया म्हाँरे आज रंगीली गणगोर, छै जी।।टेक।।
काली पीली बदली में बिजली चमके, मेघ घटा घनघोर, छै जी।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल कर रही सोर, छै जी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरणाँ में म्हाँरो जोर, छै जी।।143।।

(छै : है, काली पीली : घनघोर, सोर : शब्द, कूक, चरणाँ : चरणों।)

राग मलार

झुक आई बदरिया सावन की, सावन की मन भावन की।।टेक।।
सावन में उमंग्यो मेरो मनवा, भनक सुनी हरि आवन की।
उमड़ घुमड़ चहुँदिस से आयो, दामण दमककर झर लावन की।
नन्ही नन्ही बूँदन मेहा बरसै सीतल पवन सोहावन की।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, आनंद मंगल गावन की।।144।।

(भनक : उड़ती हुई खबर, दमक : चमक, चौंध, मेहा : वर्षा।)

सावण दे रह्या जोरा रे, घर आयो जी स्याम मोरा, रे।।टेक।।
उमड़ घुमड़ चहुँदिसि से आया, गरजत है घन घोरा, रे।
दादुर मोर पपीहा बोलै, कोयल कर रही सोरा, रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ज्यो वारूँ सोही थोरा, रे।।145।।

(जोरा : उमंग, ज्यो वारूँ : जो भी समर्पित कर दूँ।)

रंगभरी रंगभरी रंग सूँ भरी री
होली आई प्यारी रंग सूँ भरी, री।।टेक।।
उड़त गुलाल लाल भये बादल, पिचकारिन की लगी झरी, री।
चोवा चंदन और अरगजा, केसर गागर भरी धरी, री।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, चेरी होय पायन में परी, री।।146।।

(झरी : झड़ी, लगातार वर्षा।)

बदला रे तू जल भरि ले आयो।।टेक।।
छोटी छोटी बूँदन बरसन लागीं, कोयल सबद सुनायो।
गाजै बाजै पवन मधुरिया, अंबर बदराँ छायो।
सेझ सँवारी पिय घर आये, हिलमिल मंगल गायो।
मीराँ के प्रभु हरि अविनासी, भाग चलो जिन पायो।।147।।

(बूँदन : बूँदें, बदराँ : बादल, सेझ : सेज, शय्या।)

राग परज

सहेलियाँ साजन घरि आया हो।।टेक।।
बहोत दिनाँ की जोवती, विरहणि पिव गाया, हो।
रतन करूँ नेवछावरी, ले आरति साजूँ, हो।
पिया का दिया सनेसड़ा, ताहि बहोत निवाजूँ, हो।
पाँच सखी इकठी भई, मिलि मंगल गावै, हो।
पिय का रली बधावणाँ, आणंद अंगि न भावै, हो।
हरि सागर सूँ नेहरो, नैणाँ बंध्या सनेह, हो।
मीराँ सखी के आँगणै, दूधाँ बूठा मेह, हो।।148।।

(जोवती : राह देखती, नेवछावरी : न्यौछावर, सनेसड़ा : संदेशा, निवाजूँ : अनुग्रह समझूँ, बधावणाँ : बधाई, बूठा : बरसे।)

राग कजरी

म्हाराँ ओलगिया घर आया जी।।टेक।।
तन की ताप मिटी सुख पाया, हिलमिल मंगल गाया, जी।
घन की धुनि सुनि मोर मगन भया, यूँ मेरे आणंद आया, जी।
मगन भई मिलि प्रभु अपणा सूँ, भौ का दरध मिटाया, जी।
चंद कूँ देखि कमोदणि फूलै, हरखि भया मेरी काया, जी।
रग रग सीतल भई मेरी सजनी, हरि मेरे महल सिधाया, जी।
सब भगतन का कारज कीन्हा, सोई प्रभु मैं पाया, जी।
मीराँ बिरहणि सीतल होई, दुख दुन्द दूरि न्हसाया, जी।।149।।

(ओलगिया : अलग रहने वाले, प्रवासी, दरध : दर्द, पीड़ा, कमोदणि : कुमुदिनी, न्हसाया : दूर हो गया।)

मैं तो राजी भई मेरे मन में, मोहि पिया मिले इक छिन में।।टेक।।
पिया मिल्या मोहिं किरपा कीन्हीं, दीदार दिखाया हरि ने।
सतगुरु सबद लखाया अस री, ध्यान लगाया धुन में।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मगन भई मेरे मन में।।150।।

(छिन : क्षण, दीदार : साक्षात्कार, अस : इस प्रकार।)

राग होरी सिन्दूरा

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे।।टेक।।
बिनि करताल पखावज बाजै, अणहद की झणकार रे।
बिनि सुर राग छतीसूँ गावै, रोम रोम रंग सार रे।
सील संतोख की केसर घोली, प्रेम प्रीत पिचकार रे।
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर, वरहत रंग अँपार रे।
घट के सब पट खोल दिये हैं, लोक लाज सब डार रे।
होरी खेलि पीव घर आये, सोइ प्यारी प्रिय प्यार रे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल बलिहार रे।।151।।

(मना रे : हे मन रे, झणकार : झंकार की ध्वनि, सार : श्रेष्ठ, घट : हृदय, डार : दूर करके।)

राग जोगिया

बाल्हा मैं वैरागिण हूँगी हो।
जीं जीं भेष म्हाँरो साहिब रीझे, सोइ सोइ भेष धरूँगी, हो।।टेक।।
सील संतोष धरूँ घट भीतर, समता पकड़ रहूँगी, हो।
जाको नाम निरंजण कहिये, ताको ध्यान धरूँगी, हो।
गुरु ज्ञान रँगूँ तन कपड़ा, मन मुद्रा पेरूँगी, हो।
प्रेम प्रीत सूँ हरिगुण गाऊँ, चरणन लिपट रहूँगी, हो।
या तन की मैं करूँ कींगरी, रसना राम रटूँगी हो।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, साधाँ संग रहूँगी, हो।।152।।

(पेरूँगी : पहनूँगी, कींगरी : सारंगी।)

राग देस

चालाँ वाही देस प्रीतम, चालाँ वाही देव।।टेक।।
कहो कसूमल साड़ी रँगवाँ, कहो तो भगवाँ भेस।
कहो तो मोतियन माँग भरावाँ, कहो छिटकावाँ केस।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुणज्यो बिड़द नरेस।।153।।

(चालाँ : चलूँ, वाही : उसी, सुणज्यो : सुनिये, बिड़द : निश्चय, नरेस : नरेश, राजा।)

मने चाकर राखोजी, मने चाकर राखोजी ।।टेक।।
चाकर रहसूँ बाग लगासूँ, नित उठ दरसण पासूँ।
बिन्द्राबन की कुंज गलिन में, तेरी लीला गासूँ।
चाकर में दरसण पाऊँ, सुमिरण पाऊँ खरची।

भाव भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बाताँ सरसी।
मोर मुकुट पीताम्बर सोहै, गल बैजन्ती माला।
बिन्द्राबन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला।
हरे हरे नित बन्न बनाऊँ, बिच बिच राखूँ क्यारी।
साँवरिया के दरसण पाऊँ पहर कुसुम्भी सारी।
जोगी आया जोग करण कूँ, तप करणे संन्यासी।
हरी भजन कूँ साधू आया, बिन्द्राबन के बासी।
मीराँ के प्रभु गहिर गंभीरा, सदा रहोजी धीरा।
आधी रात प्रभु दरसण देहै, प्रेमनदी के तीरा।।154।।

(चाकर : दास, नौकर, लगासूँ : लगाऊँगी, गासूँ : गाऊँगी, सरसी : एक से एक बढ़कर है, बन्न : बाँध, करण कूँ : करने के लिए, धीरा : धैर्य रखो।)

गुरु-महिमा

राग धानी

 री मेरे पार निकस गया, सतगुर मार्‌या तीर।।टेक।।
बिरह भाल लगी उर अन्तरि, व्याकुल भया सरीर।
इत उत चित चलै नहिं कबहूँ, डारी प्रेम जंजीर।
कै जाणै मेरो प्रीतम प्यारो, और न जाणै पीर।
कहा करूँ मेरो वस नहिं सजनी, नैन झरत दोउ नीर।
मीराँ कहे प्रभु तुम मिलियाँ बिनि, प्राण धरत नहिं धीर।।155।।

(निकस गया : बेधकर पार कर गया, भाल : नोक, उर : हृदय, झरत : बहा रहे हैं, मिलियाँ : मिलन को।)

भर मारी रे बानाँ मेरे सतगुरु बिरह लगाय के।।टेक।।
पावन पंगा कानन बहिरा, सूझत नाहीं नैना।
खड़ी खड़ी रे पंथ निहारूँ, मरम न कोई जाना।

सतगुरु ओषद ऐसी दीन्हीं, रूम रूम भइ चैना।
सतगुरु जस्या बैद न कोई, पूछो वेद पुराना।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अमर लोक में रहना।।156।।

(पावन पंगा : पाँवों से लंगड़ा कर दिया, मरम : रहस्य, भेद, जस्या : जैसा, अमर लोक : अमरत्व की स्थिति।)

मैंने राम रतन धन पायौ।।टेक।।
बसत अमोलक दी मेरे सतगुरु, करि किरपा अपणायौ।
जनम जनम की पूँजी पाई, जग में समै खोवायौ।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै, दिन दिन बधत सवायौ।
सत की नाव खेवटिया सतगुर, भवसागर तरि आयौ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, हरखि हरखि जस गायौ।।157।।

(बसत : वस्तु, पूँजी : मूलधन, खोवायौ : खो दिया, सवायौ : अधिक, सत : सत्य, खेवटिया : केवट।)

राग मलार

लगी मोहि राम खुमारी हो।।टेक।।
रमझम बरसै मेहड़ा भीजै तन सारी, हो।
चहुँ दिस चमकै दामणी, गरजै घन भारी, हो।
सतगुर भेद बताइया, खोली भरम किंवारी, हो।
सब घट दीसै आतमा, सबहीं सूँ न्यारी, हो।
दीपग जोऊँ ग्यान का, चढ़ूँ अगम अटारी हो।
मीराँ दासी राम की, इमरत बलिहारी, हो।।158।।

(खुमारी : हल्की थकावट, दामणी : बिजली, दीपग : दीपक, इमरत : अमृत।)

मीराँ मन मानी सुरत सैल असमानी।।टेक।।
जब जब सुरत लगे वा घर की, पल पल नैनन पानी।
ज्यों हिये पीर तीर सम सालत कसक कसक कसकानी।
रात दिवस मोहिं नींद न आवत, भावै अन्न न पानी।
ऐसी पीर बिरह तन भीतर, जागत रैन बिहानी।
ऐसा बैद मिलै कोइ भेदी, देस बिदेस पिछानी।
तासों पीर कहूँ तन केरी, फिर नहिं भरमों खानी।
खोजत फिरों भेद वा घर को, कोई न करत बखानी।
रैदास संत मिले मोहि सतगुरु, दीन्हा सुरत सहदानी।
मैं मिली जाय पाय पिय अपना तब मोरी पीर बुझानी।
मीराँ खाक खलक सिर डारी, मैं अपना घर जानी।।159।।

(मन मानी : मन में बैठ गयी, जँच गयी, सैल : सैर, सुरत : स्मृति, सालत : व्यथित करती है, सहदानी : निशानी।)

रमइया बिनि यौं जिवड़ौ दुख पावै।
कहो कुण धीर बँधावै।।टेक।।
यौ संसार कुबधि को भाँडो, साध संगति नहिं भावै।
राम नाम की निंद्या ठाणै, करत ही करम कुमावै।
राम नाम बिनि मुकुति न पावै, फिर चौरासी जावै।
साध संगत में कबहूँ न जावै, मूरखि जनम गुमावै।
जन मीराँ सतगुर के सरणै, जीव परमपद पावै।।160।।

(जिवड़ौ : जीव, कुण : कौन।)

राग बिलावल

लेताँ लेताँ रामनाम रे, लोकड़ियाँ तो लाजाँ मरे छै।।टेक।।
हरि मंदिर जाँता पाँवलिया रे दूखे, फिर आवे सारो गाम, रे।
झगड़ो थाय त्याँ दौड़ी ने जाय रे मूकीने घर ना काम, रे।

भाँड भवैया गणिका नृत करताँ, बेसी रह चारे जाम, रे।
मीराँना प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित हाम, रे।।161।।

(लोकड़ियाँ : लोग, पाँवलिया : पैर, मूकिने : छोड़कर, भवैया : नाचने वाला, जाम : प्रहर, हाम : समर्पित हो जाना।)

यहि बिधि भक्ति कैसे होय।।टेक।।
मन की मैल हियतें न छूटी, दियो तिलक सिर धोय।
काम कूकर लोभ डोरी, वाँधि मोहि चंडाल।
क्रोध कसाई रहत घट में, कैसे मिले गोपाल।
बिलार विषया लालजी रे, ताहि भोजन देत।
दीन हीन ह्वै छुधा रत से, राम नाम न लेत।
आपहि आप पुजाय के रे, फूल अंग न समात।
अभिमान टीला किये बहु कहु, जल कहाँ ठहरात।
जो तेरे हिय अंतर की जानै, तासों कपट न बनै।
हिरदे हरि को नाम न आवै, मुख तें मनिया गनै।
हरि हितु से हेत कर, संसार आसा त्याग।
दास मीराँ लाल गिरधर, सहज कर बैराग।।162।।

(मनिया : माला के मोती।)

राग सारंग

आली म्हाँने लागे बृन्दाबन नीको।।टेक।।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा, दरसण गोविंद जी को।
निरमल नीर बहत जमना में, भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासण आप बिराजे, मुगट धर्‌यो तुलसी को।
कुंजन कुंजन फिरत राधिका, सबद सुणत मुरली को।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भजन बिना नर फीको।।163।।

(नीको : भला, मुगट : मुकुट, फीको : नीरस।)

राग सूहा

चालो मन गंगा जमना तीर। ।टेक।।
गंगा जमना निरमल पाणी, सीतल होत सरीर।
बंसी बजावत गावत कान्हो, संग लियाँ बलवीर।
मोर मुगट पीतांबर सोहै, कुंडल झलकत हीर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पै सीर।।164।।

(सीतल : शांत, लियाँ : लिए, बलवीर : बलराम।)

राग कनड़ी

हो काँनाँ किन गूँथी जुल्फाँ कारियाँ। ।टेक।।
सुघर कला प्रवीन हाथन सूँ, जसुमतिजू ने सवारियाँ।
जो तुम आओ मेरी बाखरियाँ, जरि राखूँ किवारियाँ।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, इन जुलफन पर वारियाँ।।165।।

(काँनाँ : कान्हा, जुल्फाँ : केश, बाखरियाँ : छोटे मकान।)

राग परज

गोकुला के बासी भले ही आए, गोकुला के बासी। ।टेक।।
गोकुल की नारी देखत, आनंद सुखरासी।
एक गावत एक नाँचत, एक करत हाँसी।
पीतांबर फेटा बाँधे, अरगजा सुबासी।
गिरिधर से सुनवल ठाकुर, मीराँ सी दासी।।166।।

(अरगजा : एक प्रकार का सुगंधित द्रव्य, सुनवल : सुन्दर।)

राग छाया टोड़ी

सखी, म्हारो कानूड़ो कलेजे की कोर।।टेक।।
मोर मुगट पीतांबर सोहै, कुंडल की झकझोर।
बिन्द्रावन की कुंज गलिन में, नाचत नंद किसोर।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कँवल चितचोर।।167।।

(कानूड़ो : कन्हैया, कोर : टुकड़ा, कुंज : बगिया।)

राग प्रभाती

जागो बंसीवारे ललना, जागो मोरे प्यारे।।टेक।।
रजनी बीती भोर भयो है, घर घर खुले किंवारे।
गोपी दही मथत सुनियत है, कँगना के झनकारे।
उठो लाल जी भोर भयो है, सुर नर ठाढ़े द्वारे।
ग्वाल बाल सब करत कुलाहल, जय जय सबद उचारे।
माखन रोटी हाथ में लीनी, गउवन के रखवारे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सरण आयाँ कूँ तारे।।168।।

(किंवारे : दरवाजे, ठाढ़े : खड़े, उचारे : उच्चारण, तारे : तारते हैं।)

राग कान्हरो

भई हों बावरी सुनके बाँसुरी, हरि बिनु कछु न सुहाइ।। टेक।।
श्रवण सुनत मेरी सुध बुध बिसरी, लगी रहत तामें माइ।
नेम धरम कोन कोनी मुरलिया, कोन तिहास।
मीराँ के प्रभु बस कर लीने, सप्तताननि की फाँस।।169।।

(ताननि : तान, स्वर, फाँस : फंदा।)

कमल दल लोचन, तैने कैसे नाथ्यो भुजंग।।टेक।।
पैसि पियाल काली नाग नाथ्यो, फणफण निर्त करंत।

कूद पर्‍यौ न डर्‍यौ जल माहीं, और काहू नहिं संक।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, श्री बृन्दाबन चंद।।170।।

(पियाल : पाताल, माहीं : भीतर, संक : शंका।)

राग काफी

आज अनारी ले गयो सारी, बैठी कदम की डारी, हे माय।।टेक।।
म्हारे मेल पड्यो गिरधारी, हे माय, आज अनारी.।
मैं जल जमुना भरन गई थी, आ गयो कृश्न मुरारी, हे माय।
ले गयो सारी अनारी म्हारी, जल में ऊभी उघारी, हे माय।
सखी साइनि मोरी हँसत है, हँसि हँसि दे मोहि तारी, हे माय।
सास बुरी अर नणद हठीली, लरि लरि दे मोहि गारी, हे माय।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर चरण कमल की बारी, हे माय।।171।।

(ऊभी : डूबी, अर : और, बारी : बलिहारी।)

आवत मोरी गलियन में गिरधारी,
मैं तो छुप गई लाज की मारी।।टेक।।
कुसुमल पाग केसरिया जामा, ऊपर फूल हजारी।
मुकुट ऊपर छत्र बिराजे, कुंडल की छबि न्यारी।
केसरी चीर दरयाई को लेंगो, ऊपर अंगिया भारी।
आवत देखी किसन मुरारी, छिप गई राधा प्यारी।
मोर मुकट मनोहर सोहै, नथनी की छबि न्यारी।
गल मोतिन की माल बिराजे, चरण कमल बलिहारी।
ऊभी राधाप्यारी अरज करत है, सुणजे किसन मुरारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल पर वारी।।172।।

(कुसुमल : लाल रंग की, जामा : पहनावा, ऊभी : पानी में खड़ी।)

छाँडो लँगर मोरी बहियाँ गहोना।।टेक।।
मैं तो नार पराये घर की, मेरे भरोसे गुपाल रहोना।
जो तुम मेरी बहियाँ गहत हो, नयन जोर मोर प्राण हरोना।
बृन्दाबन की कुंज गली में, रीति छोड़ अनरीति करोना।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल चित टारे टरोना।।173।।

(लँगर : ढीठ, नटखट, टारे : दूर करने पर भी, भूलने पर भी।)

माई मेरो मोहने मन हर्‌यो।।टेक।।
कहा करूँ कित जाऊँ सजनी, प्रान पुरुस सूँ बर्‌यो।
हूँ जल भरने जात थी सजनी, कलस माथे धर्‌यो।
साँवरी सी किसोर मूरत, कछुक टोनो करो।
लोक लाज बिसारि डारी, तबहीं कारज सर्‌यो।
दासि मीराँ लाल गिरधर, छान ये बर बर्‌यो।।174।।

(छान : छिपे हुए।)

प्रेमनी प्रेमनी प्रेमनी रे, मने लागी कटारो प्रेमनी।।टेक।।
जल जमुनामाँ भरवा गयाँताँ हती नागर माथे हेमनी, रे।
काचे ते तातणे हरिजीए बाँधा, जेम खेंचे तेम तेमनी, रे।
मीराँ कहे प्रभु गिरधर नागर, शामली सुरत शुभ एमनी, रे।।175।।

(भरवा गयाँताँ : भरने गई, हती : थी, हेमनी : सोने की, तातणे : धागे, जेम : जैसे, तेम तेमनी : वैसे ही, एमनी : ऐसे ही है।)

राग हंस नारायण

आली साँवरो की दृष्टि, मानो प्रेम की कटारी है।।टेक।।
लागत बेहाल भई तन की सुधि बुद्धि गई।
तन मन व्यापो प्रेम, मानो मतवारी है।

सखियाँ मिलि दुइ चारी, बावरी सी भई न्यारी।
हौं तो वाको नीको जानों, कुंज को विहारी है।
चंद को चकोर चाहै, दीपक पतंग दाहै।
जल बिना मीन जैसे, तैसे प्रीत प्यारी है।
विनती करो हे स्याम, लागों मैं तुम्हारे पाम।
मीराँ प्रभु ऐसे जानो, दासी तुम्हारी है।।176।।

(न्यारी : अलग, नीको : अच्छा, पाम : पाँव, चरण।)

फाग लीला

होली झंझोटी

होरी खेलत हैं गिरधारी।।टेक।।
मुरली चंग बजत डफ न्यारो, संग जुवति ब्रजनारी।
चंदन केसर छिरकत मोहन, अपने हाथ विहारी।
भरि भरि मूठि गुलाल लाल चहुँ, देत सबन पै डारी।
छैल छबीले नवल कान्ह संग, स्यामा प्राण पियारी।
गावत चार धमार राग तँह, दै दै कल करतारी।
फाग जु खेलत रसिक साँवरो, बाढ़्यो रस ब्रज भारी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, मोहन लाल बिहारी।।177।।

(चंग : छोटे आकार का बाजा, डफली, चार : चाल, जु : जो।)

दधि बेचन लीला

राग सारंग

या ब्रज में कछू देख्यो री टोना।।टेक।।
ले मटुकी सिर चली गुजरिया, आगे मिले बाबा नंदजी के छोना।
दधि को नाम बिसरि गयो प्यारी, 'लेलेहु री कोइ स्याम सलोना'।
बृन्दाबन की कुंज गलिन में, आँख लगाइ गयो मनमोहना।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, सुन्दर स्याम सुघर रसलोना।।178।।

(मटुकी : मटकी, छोना : कुमार, रसलोना : लावण्ययुक्त।)

राग मारू

कोई स्याम मनोहर ल्योरी, सिर धरै मटकिया डोलै।।टेक।।
दधि को नाँव बिसर गई ग्वालन, 'हरिल्यो, हरिल्यो', बोलै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, चेरी भई बिन मोलै।
कृष्णरूप छकी है ग्वालिन, औरहि औरै बोलै।।179।।

(बिसर गई : भूल गयी, छकी : तृप्त हो गयी।)

राग सोरठ

होजी हरि कित गये नेह लगाय।।टेक।।
नेह लगाय मेरो हर लीयो, रस भरी टेर सुनाय।
मेरे मन में ऐसी आवै, मरूँ जहर बिस खाय।
छाड़ि गये बिसवासघात करि, नेह केरी नाव चढ़ाय।
मीराँ के प्रभु कब रे मिलोगे, रहे मधुपुरी छाय।।180।।

(मधुपुरी : मथुरा, छाय : बैठे रहे।)

राग दुर्गा

हो गये स्याम दूइज के चंदा।।टेक।।
मधुबन जाइ भये मधुबनिया, हम पर डारो प्रेम को फंदा।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, अब तो नेह परो कछु मंदा।।181।।

(दूइज : द्वितीया, मधुबन : मथुरा, परो : पड़ रहा है।)

राग धमार

स्याम म्हाँसू ऐंडो डोले हो, औरन सूँ खेलै धमाल।
म्हाँसूँ मुखहिं न बोले हो, स्याम म्हाँसूँ.।।टेक।।
म्हारी गलियाँ नाँ फिरे, वाँके आँगण डोले, हो।
म्हाँरी अंगुली ना छुवे, वाँकी बहियाँ मोरे, हो।
म्हाँरो अँचरा न छवो, वाँको घूँघट खोले, हो।
मीराँ के प्रभु साँवरो, रंग रसिया डोले, हो।।182।।

(ऐंडो : इतराता है, डोले हो : चलता है, वाँके : उनके, अँचरा : आँचल।)

राग जौनपुरी

सखी री लाज बैरण भई।।टेक।।
श्रीलाल गोपाल के संग, काहे नाहीं गई।
गठिन क्रूर अक्रूर आयो, साजि रथ कह नई।
रथ चढ़ाय गोपाल लैगो, हाथ मींजत रही।
कठिन छाती स्याम बिछुरत, बिरह तें तन तई।
दासि मीराँ लाल गिरधर, बिखर क्यूँ क्यूँ ना गई।।183।।

(बैरण : शत्रु, बैरी, लैगो : ले गया, तें : से।)

प्रेम-संवाद

अपणे करम को वो छै दोस, काकूँ दीजै रे ऊधो अपणे.।।टेक।।
सुणियो मेरी बगड़ पड़ोसण, गेले चलत लागी चोट।
पहली ज्ञान मान नहिं कीन्हौ, मैं ममता की बाधी पोट।
मैं जाण्यूँ हरि नाहिं तजेंगे, करम लिख्यौ भलि पोच।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, परो निवारोनी सोच।।184।।

(छे : है, काकूँ : किसको, ऊधो : उद्धव, कृष्ण के मित्र का नाम,

दीजै : दिया जाये, बगड़ : बगल में, निकट ही, पोट : गठड़ी, पोटली, निवारोनी : निवारण करो।)

राग परज

गोहने गुपाल फिरूँ, ऐसी आवत मन में।
अवलोकत बारिज बदन, बिबस भई तन में।
मुरली कर लकुट लेऊँ, पीत बसन धारूँ।
काछी गोप भेष मुकट, गोधन संग चारूँ।
हम भई गुलफ मलता, बृन्दाबन रैनाँ।
पशु पंछी मरकट गुनी, श्रवन सुनत बैनाँ।
गुरुजन कठिन कानि, कासों री कहिए।
मीराँ प्रभु गिरधर मिलि, ऐसे ही रहिए।।185।।

(गोहने : संग में, साथ-साथ, बारिज बदन : कृष्ण का मुखकमल, काछी : बनाकर, कानि : संकोच हो रहा है।)

कुण बाँचै पाती, बिना प्रभु कुण बाँचे पाती।
कागद ले उधो जी आयो, कहाँ रह्या साथी।
आवत जावत पाँव घिस्या रे (बाला), अँखियाँ भईं राती।
कागद ले राधा बाँचण बैठी, भर आई छाती।
नैण नीरज में अंब बहे रे (बाला), गंगा बहि जाती।
पानाँ ज्यूँ पीली पड़ी रे (बाला), अन्न नहिं खाती।
हरि बिन जिवड़ो यूँ जलै रे (बाला), ज्यूँ दीपक संग बाती।
म्हने भरोसो राम को रे (बाला), डूबति रह्यो हाथी।
दास मीराँ लाल गिरधर, साँकड़ारो साथी।।186।।

(कागद : कागज की पत्रिका, राती : लाल, अंब : पानी, जल।)

अच्छे मीठे चाख चाख, बेर लाई भीलणी।।टेक।।
ऐसी कहा अचारवती, रूप नहीं एक रती;
नीच कुल ओछी जात, अति ही कुचीलणी।
जूठे फल लीन्हें राम, प्रेम की प्रतीत जाण;
ऊँच नीच जाने नहीं, रस की रसीलणी।
ऐसी कहा वेद पढ़ी, छिन में विमाण चढ़ी;
हरि जी सूँ बाँध्यो हेत, दास मीराँ तरै जोइ;
पतित-पावन प्रभु, गोकुल अहीरणी।।187।।

(बेर : बेर फल, एक रती : कुछ भी, अचारवती : आचारपूर्वक रहने वाली स्त्री, भीलणी : भील स्त्री, हेत : संबंध, जोइ : जो कोई भी।)

राग पीलू

देखत राम हँसे सुदामाँ कूँ, देखत राम हँसे।।टेक।।
फाटी तो फूलड़ियाँ पाँव उभाणे, चलतै चरण घसे।
बालपणे का मित सुदामाँ, अब क्यूँ दूर बसे।
कहा भावज ने भेंट पठाई, तांदुल तीन पसे।
कित गई प्रभु मोरी टूटी टपरिया, हीरा मोती लाल कसे।
कित गई प्रभु मोरी गउवन बछिया, द्वारा बिच हसती फसे।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, सरणे तोरे बसे।।188।।

(फूलड़ियाँ : जातियाँ, तान्दुल : चावल, टपरिया : कुटिया, सरणे : शरण में।)

मेल

तेरो मरम नहिं पायौ रे जोगी।।टेक।।
आसण माँडि गुफा में बैठो, ध्यान हरी को लगायो।
गल बिच सेली हाथ हाजरियो, अंग भभूति रमायो।
मीराँ के प्रभु हरि अबिनासी, भाग लिख्यो सो ही पायो।।189।।

(मरम : मर्म, रहस्य, सेली : योगियों की माला, हाजरियो : रूमाल जैसा वस्त्र।)

राग विहाग

करम गति टारे नाहिं टरे।।टेक।।
सतबादी हरिचंद से राजा, (सो तो) नीच घर नीर भरे।
पाँच पांडु अरु सती द्रोपदी, हाड़ हिमालै गरे।
जग्य कियो बलि लेण इन्द्रासण, सो पाताल धरे।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, बिख से अम्रित करे।।190।।

(गरे : गले, जग्य : यज्ञ, लेण : लेने को, धरे : भेज दिये गये।)

रहस्य

लागी सोही जाणै, कठण लगण दी पीर।।टेक।।
विपति पड्याँ कोइ निकटि न आवै, सुख में, सबको सीर।
बाहरि घाव कछू नहिं दीसै, रोम रोम दी पीर।
जन मीराँ गिरधर के ऊपर, सदकै करूँ सरीर।।191।।

(कठण : कठिन, दुष्कर, दी : की, सीर : हिस्सा।)

संदेश

चालो अगम के देस, काल देखत डरै।
वहाँ भरा प्रेम का होज, हंस केल्याँ करै।
ओढण लज्जा चीर, धीरज को घाँघरो।
छिमता काँकण हाथ, सुमति को मून्दरो।
दिल दुलड़ी दरियाव, साँच को दोवड़ो।
उबटन गुरु को ज्ञान, ध्यान को धोवणो।
कान अखोटा ज्ञान, जुगत को झूटणो।
बेसर हरि को नाम, चूड़ो चित ऊजलो।

जीहर सील संतोष, निरत को घूँघरो।
बिदली गज और हार, तिलक गुरु ज्ञान को।
सज सोलह सिणगार, पहरि सोने राखड़ी।
साँवलिया सूँ प्रीति, औराँ सूँ आखड़ी।।192।।

(होज : कुंड, केल्याँ : क्रीड़ाएँ, चीर : वस्त्र, साड़ी, काँकण : कंगन, मून्दरो : अँगूठी, दोवड़ो : एक गहना, अखोटा : कान में पहनने का एक गहना, बेसर : नाक का गहना, जीहर : गहना, निरत : लीनता, अनुरक्ति, राखड़ी : चूड़ा, आखड़ी : उदासीन।)

राग जैजैवंती

गली तो चारों बन्द हुईं, मैं हरि से मिलूँ कैसों जाइ।
ऊँची नीचीं राह लपटीली, पाँव नहीं ठहराइ।
सोच सोच पग धरूँ जतन से, बार बार डिग जाइ।
ऊँचा नीचा महल पिया का, हमसे चढ़्या न जाइ।
पिया दूर पंथ म्हाँरो झीणो, सुरत झकोला खाइ।
कोस कोस पर पहरा बैठ्या, पैंड पैंड बटमार।
हे बिधना कैसी रच दीन्हीं, दूर वस्यों म्हाँरो गाम।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर सतगुरु दई बताय।
जुगन जुगन के बिछड़ी मीराँ, घर में लीन्हीं लाय।।193।।

(लपटीली : रपटीली, चिकनी, सुरत : स्मरणशक्ति, झकोला : झोंका, पैंड पैंड : कदम-कदम पर, बटमार : डाकू।)

राग छायानट

भज मन चरण कँमल अबिनासी।।टेक।।
जेताइ दीसे धरण गगन बिच, तेताइ सब उठ जासी।
कहा भयो तीरथ व्रत कीन्हें, कहा किये करवत कासी।
इण देही का गरब न करणा, माटी में मिल जासी।

यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्याँ उठ जासी।
कहा भयो है भगवा पहर्याँ, घर तज भये संन्यासी।
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर आसी।
अरज करो अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, काटो जम की फाँसी।।194।।

(अबिनासी : परमात्मा, धरण : धरती, इण : इस, देही : शरीर, भयो : हुआ, जुगति : युक्ति, काटो : बन्द करो।)

राग हमीर

नहिं एसो जनम बार बार।।टेक।।
का जानूँ कछु पुण्य प्रगटे, मानुसा अवतार।
बढ़त छिन छिन घटत पल पल, जात लागे न बार।
बिरछ के ज्यूँ पात टूटे, बहुरि न लागे डार।
भौसागर अति जोर कहिये, अनंत ऊंडी धार।
राम नाम का बाँध बेड़ा, उतर परले पार।
ज्ञान चोसर मंडी चोहटे, सुरत पासा सार।
या दुनियाँ में रची बाजी, जीत भावै हार।।
साध संत महंत ज्ञानी, चलत करत पुकार।
दासी मीराँ लाल गिरधर, जीवणा दिन च्यार।।195।।

(बार : विलंब, जोर : प्रबल, तीव्र, भावै : चाहे।)

जग में जीवणा थोड़ा, राम कुण कह रे जंजार।।टेक।।
मात पिता जो जन्म दियो है, करम दियो करतार।
कइरे खाइयो कइरे खरचियो, कइरे कियो उपकार।
दिया लिया तेर संग चलेगा, और नहीं तेरो लार।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, भज उतरे भव पार।।196।।

(जीवणा : जीवनकाल, कुण : क्यों न, कइ : क्या, लार : संबंध।)

मनखा जनम पदारथ पायो, ऐसी बहुर न आती।।टेक।।
अबके मोसर ज्ञान बिचारो, राम नाम मुख गाती।
सतगुरु मिलिया सुंज पिछाणी, ऐसा ब्रह्म मैं पाती!।
सगुरा सरा अमृत पीवे, निगुरा प्यासा जाती।
मगन भया मेरा मन सुख में, गोविंद का गुण गाती।
साहब पाया आदि अनादी, नातर भव में जाती।
मीराँ कहे इक आस आपकी, औराँ सूँ सकुचाती।।197।।

(मोसर : अवसर, सुंज : सूझ गयी, पाती : पा गयी, नातर : नहीं तो।)

राग कनड़ी

बंदे बंदगी मति भूल।।टेक।।
चार दिना की करले खूबी, ज्यूँ दाड़िमदा फूल।
आया था ए लोभ के कारण, मूल गमाया भूल।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, रहना है वे हजूर।।198।।

(बंदगी : परमात्मा की आराधना, दाड़िमदा : अनार का, दा : का, ए : अरे, हे, हजूर : सामने।)

राग रागश्री

रामनाम रस पीजै मनुआँ, रामनाम रस पीजै।।टेक।।
तज कुसंग सतसंग बैठ नित, हरि चरचा सुण लीजै।
काम क्रोध मद लोभ मोह कूँ, चित से बहाय दीजै।
मीराँ के प्रभु गिरधर नागर, ताहि के रंग में भीजै।।199।।

(बहाय दीजै : दूर कर दीजिये।)

मेरे मन रामहिं राम रटैरे।।टेक।।
राम नाम जप लीजे प्राणी, कोटिक पाप कटैरे।
जनम जनम के खतजु पुराने, नामहिं लेत फटैरे।
कनक कटोरे इम्रत भरियो, पीवत कौन नटैरे।
मीराँ कहै प्रभु हरि अविनासी, तन मन ताहि पटैरे।।200।।

(कोटिक : करोड़ों, फटै : नष्ट होना, नटै : इन्कार करना, मुकरना, ताहि : उसी के साथ।)

राग नीलाम्बरी

सुरत दीनानाथ से लागी, तूँतो समझ सुहागण नार।।टेक।।
लगनी लहँगी पहर सुहागण, बीती जाय बहार।
धन जोबन है पावणा री, मिलै न दूजी बार।
रामनाम को चुड़लो पहिरो, प्रेम को सुरमो सार।
नकबेसर हरि नाम की री, उतरि चलोनी परले पार।
ऐसे बर को क्या करूँ, जो जनमै और मर जाय।
बर बरिये एक साँवरो री, (मेरो) चुड़लो अमर होय जाय।
मैं जान्यो हरि मैं ठग्यो री, हरि ठग ले गयो मोय।
लख चौरासी मौरचा री, छिन में गेर्‌या छै बिगोय।
सुरत चली जहाँ मैं चली री, कृष्ण नाम झणकार।
अबिनासी की पोल पर जी, मीराँ करै छै पुकार।।201।।

(सुरत : परमात्मा की स्तुति, बहार : सुअवसर, पावणा : पाहुना, मेहमान, सार : उत्तम, नकबेसर : नाक में पहनने का एक गहना, पोल : द्वार, करै छै : कर रही है।)

परिशिष्ट

सहजोबाई और मीराँ

यहाँ हम सहजोबाई की वाणी के कुछ पक्षों को उठा रहे हैं ताकि पाठकों को अठारहवीं शताब्दी की मीराँ-सहजोबाई के चिन्तन, संवेदन से परिचित होने में सुभीता हो सके। सहजोबाई की वाणी भी मीराँ की ही भाँति सरल, सहज और स्वतः ही बोधगम्य है।

सहजोबाई ने मीराँ से, उनके जीवन से कुछ सबक तो लिया ही होगा, क्योंकि ये संस्कार अपने आपमें उस दुःसाध्य निर्णय तक संत-मेंत में नहीं पहुँचाते, जहाँ सहजो पहुँचीं। भले ही तात्कालिक उत्प्रेरक महात्मा चरणदास का कथन रहा हो, जिससे सहजो ने विवाह से विरत होने का निश्चय किया और फिर उसी समय बारात लेकर आते दूल्हे का दुर्योग से देहांत भी हो गया।

तात्कालिक समाज में इस घटना के चमत्कारिक प्रभाव ही थे कि सहजोबाई के माता-पिता, भाई आदि पूरे परिवार ने ही महात्मा चरणदास को गुरु मानकर अध्यात्म का मार्ग स्वीकार कर लिया। तो भी सहजो की अपनी मति से जो विवाह न करने का निर्णय निकला, उसके पीछे उनकी विद्रोह-भावना या क्रांति-चेतना प्रस्फुटित हुई, जिससे संतों के आत्म का उद्रेकी स्वभाव सिद्ध होता है। मीराँ के विषय में भी कुछ इसी प्रकार की बात प्रकट होती है।

सहजोबाई द्वारा संत-मार्ग स्वीकार करना भी एक क्रांतिकारी घटना ही मानी जानी चाहिए जिसके उदर में सामाजिक विडम्बनाओं के कारण पलता-पिघलता हुआ लावा एकत्रित होकर अचानक ही फूट पड़ा। मानवजातीय विडंबना और संकटों के उदर से ही संतों का जन्म होता है।

लोक-चेतना की उपजाऊ भूमि, जब नम आँसुओं से भीगती है, तब घनीभूत आर्त्त-वेदना के बीज फूटते हैं और संतों का आविर्भाव होता है। पुरुष संतों के आविर्भूत होने से भी कई गुना अधिक दुर्दमनीय दशाएँ, बड़े विरल रूप में स्त्री संतों को पैदा करती हैं। स्त्री संतों का आना, इस दृष्टि से दुर्लभ घटना मानी जानी चाहिए। भारतीय समाज में स्त्री संतों की उपस्थिति इसी दुर्लभता को बखूबी रेखांकित करती है।

माता-पिता ने सहजो का 11-12 वर्ष की अल्पायु में ही विवाह भार्गव-कुल के एक संपन्न परिवार में निश्चित किया। विवाह के अवसर पर सजी-सँवरी बैठी सहजो को आशीर्वाद देने उसके मामा के पुत्र तथा प्रसिद्धि पा चुके संत चरणदास आये और उन्होंने सहजो को देखकर कहा—

"सहजो तनिक सुहाग पर, कहा गुँदाए शीस।
मरना है रहना नहीं, जाना बिस्वे बीस।।"

ये पंक्तियाँ सुनकर सहजो की चेतना पर प्रहार हुआ। उसने कहा कि मैं अब विवाह नहीं करूँगी और प्रभु-भक्ति में ही जीवन व्यतीत करूँगी। तभी बाराती रोते हुए वहाँ आये और बताया कि आतिशबाजी से अचानक घोड़ी भड़क गयी और एक वृक्ष से टकरा गयी, जिससे वर की मृत्यु हो गयी है।

इस दुखद घटना से शोकाकुल होकर ही और चरणदास की त्रिकालज्ञता से प्रभावित होकर सहजो के पिता हरिप्रसाद तथा माता अनूपीबाई अपने चारों पुत्रों और पुत्री सहित उनके शिष्य बन गये।

सहजोबाई का जन्म रविवार, 15 जुलाई, सन् 1725 को दिल्ली के परीक्षितपुरा नामक स्थान पर हुआ। इनका एकमात्र वाणी-ग्रंथ 'सहज-प्रकाश' नाम से उपलब्ध है। दयाबाई इनकी गुरु-बहन बनीं। 24 जनवरी, 1805 को सहजो ने देह त्याग दी।

सहजोबाई को अठारहवीं शताब्दी की मीराँ कहा जाता है। किंतु मीराँ की भाँति कृष्ण-भक्त होने का साम्य रखते हुए भी कुछ भिन्नताएँ भी उल्लेखनीय हैं। मीराँ विवाहिता थीं जबकि सहजो ब्रह्मचारिणी थीं। मीराँ सगुण को ही निर्गुण की प्राप्ति का आधार मानकर राधा-कृष्ण के युगल रूप की उपासिका थीं। गुरु चरणदास ने सहजो को अष्टांग योग, नवधा भक्ति का ज्ञान दिया तथा योगाभ्यास की विधि बताई। सहजोबाई

ने पाँच वर्षों तक अखण्ड समाधि में रहकर घोर साधना की।

मीराँ तो समाज को त्यागकर वैराग्य में लीन हो गयी थीं, किन्तु सहजो समाज में रहकर समादृत हुईं। मुगल बादशाह आलमशाह द्वितीय ने 1100 स्वर्ण मुद्रायें तथा बंथला नामक ग्राम जागीर स्वरूप सहजो को देकर समादर दिया। यह ग्राम तहसील गाजियाबाद में स्थित है।

संतों ने उत्पीड़ित वर्ग के लोगों—कामगारों, उपेक्षितों, वंचितों, बेबसों को आत्मावान बनाने के उपाय और उपदेश दिये। धनिकों, जमींदारों, सामंतों, श्रेष्ठ वर्ग के विभिन्न लोगों पर हँसना सिखाया, यह बताया कि अतिरिक्त धन अपवित्र, अमानवीय साधनों और नीतियों से आता है। उन्होंने समाज को बताया कि धन अर्जित करना और उसे बाँटकर खाना यही सच्चा धर्म है। जो ऐसा नहीं करते, वे झूठी मानवता के द्योतक मात्र हैं। उन्होंने समाज को बताया कि ईश्वर के घर में कोई दंभी, अहंकारी व्यक्ति प्रवेश नहीं पा सकता।

कबीर, रैदास, नानक, दादू, मलूक, चरणदास और मीराँ की ही भाँति सहजोबाई भी यही कहती हैं कि—

बड़ा न जाने पाये है, साहब के दरबार।
द्वारे ही सूँ लागे है, सहजो मोटी मार।।
सहजो तारे सब सुखी, ग्रहैं चन्द्र और सूर।
साधू चाहैं दीनता, गचहै बड़ाई क्रूर।।

सहजोबाई इसी क्रम में आगे ऐसे कहती हैं—

अभिमानी नाहर बड़ो, श्रमत फिरत उज्जार।
सहजो नन्ही बाकरी, प्यार करै संसार।।

मीराँ और सहजो दोनों ही भौतिक संसार के मूल्यों-मानों के ऊपर अध्यात्म एवं आत्म को वरीयता देकर सामाजिक परिवर्तन की दिशाओं को पुष्ट करने का आग्रह करती हैं। सहजो का कथन है—

प्रभुताई को चहत है, प्रभु को चहै न कोय।
अभिमानी घट नीच है, सहजो ऊँच न होय।।

मीराँ के जीवन में नारी-मुक्ति का अर्थ था—सामाजिक मर्यादाओं का पालन करते हुए अपनी इच्छानुसार जीवन शैली का चयन करना। दुर्भाग्यवश वह विधवा हो गयीं। मध्यकालीन भारतीय समाज जो स्त्रियों

पर कठोर संयम का दंडधारी था, सहज ही विधवा के लिए तो कठोरतम होगा ही। ऐसे में मीराँ की माँग तो केवल यही थी कि वह अपने आराध्य, अपने परम पुरुष को अपना पति कह सकें। उन्होंने किसी पार्थिव पति से, पुरुष से संबंध बनाने की उच्छृंखलता नहीं की, वह तो मात्र मानसिक स्तर पर परम पुरुष से संबंध बनाने की इच्छा की थी।

आज यह कहा जा सकता है कि नारी-मुक्ति की अवधारणा का बीजारोपण मीराँ ने ही पाँच सौ वर्ष पहले कर दिया था। वर्तमान नारी समाज को मीराँ का ऋणी होना चाहिए।

मीराँ और आधुनिक संदर्भ

भारतीय दार्शनिक वाङ्मय में परमात्मा के साथ आत्मा का संबंध पुरुष और नारी के संबंध के तुल्य है। पुरुष-प्रकृति का युगलभाव इसी के आधार में है। संतों के समस्त आग्रह विद्या-आत्मज्ञान, अध्यात्मज्ञान प्राप्ति के रहते हैं। मीराँ भी अपने मानस-गुरु रैदास और उन्हीं के समकालीन कबीर के मार्ग का अनुसरण कर अध्यात्म की अमर गायिका बन गयीं।

लोक और लौकिक शब्दों में जिस वास्तविक निःसर्ग की पहचान होती है, उसी लोक एवं प्रकाश चेतना को अलौकिक एवं आलोक के रूप में देखना हमें अभीष्ट है, जिस लोक-संपर्क स्वीकृति से भगवान् की मूर्तियों में प्राण-प्रतिष्ठा होती है, वरना वे निर्जीव मानी जाती हैं, उस लोक की चेतना ही अलौकिक चेतना है जो विकसित होकर विराट एवं सार्वभौम हो गयी है।

मीराँ इसी निःसर्ग लोक की आराधिका हैं। वह गिरधर के रंग में रँग गयी हैं। उसके प्रेम में अनुरक्त हो गयी हैं। शरीर रूपी इन वस्त्रों को खोलकर आत्मरूप होकर परमात्मरूप प्रिय से वह एकात्म हो गयीं। जिनके पति विदेश में रहते हैं वे तो उन्हें पत्र-पाती लिख-लिखकर भेजती रहती हैं, किंतु मीराँ कहती हैं कि मेरा प्रियतम तो मेरे हृदय में ही निवास करता है। अतः मैं न कहीं जाती हूँ, न ही कहीं आती हूँ। वह कहती हैं कि यह सारा संसार ही नाशवान है।

वह कहती हैं कि मुझे तो मेरे सद्‌गुरु भी मिल गये हैं, जिन्होंने मेरे सारे संशय दूर कर दिये। मुझे सच्ची राह दिखला दी।

अतः हम देखते हैं कि मीराँ जिस प्रियतम को अपना इष्ट मान चुकी हैं, वह शाश्वत् पुरुष परब्रह्म है, और मीराँ स्वयं प्रकृति स्वरूप हैं। यहाँ पर पुरुष और प्रकृति का विशिष्ट अद्वैत रूप व्यक्त हुआ है। इसी दर्शन को मीराँ ने माधुर्य-भक्ति के रस में सराबोर करके सबको अवगाहन करवाया है।

मीराँ लोक और निःसर्ग लोक की आदिमता, आस-विश्वास, दुख-उल्लास, विरह-वेदना की लोक-गायिका हैं। मीराँ की मनोव्यथा की रूपरेखा और वेदना एक शाश्वत नारी के शाश्वत घाव सरीखी है, जो जब भी दुखों में घिरती है तो समूची एक आदिम व्यथा बन जाती है।

सामाजिक नैतिकताओं का निर्वाह, सामाजिक व्यवस्था के निर्वहन के लिए आवश्यक होता है, किंतु एक संत के लिए यह सामाजिक नैतिकता के मूल्य तभी तक जरूरी होते हैं, जब तक कि वह आत्मज्ञान नहीं प्राप्त कर लेता। आत्मज्ञानी के लिए ये नैतिक नियम-अनुशासन सीमा नहीं रह जाते, क्योंकि वह उस आत्मज्ञान के स्वतःस्फूर्त नियमों के क्षेत्र में पहुँच जाता है, जहाँ आत्म परमात्म से साक्षात्कार करने लगता है।

इस अवस्था में पहुँचकर संत लोग पाप-पुण्य, नैतिक-अनैतिक, कर्म-अकर्म के बाहरी सामाजिक पैमाने अनिवार्यतः त्याग दिया करते हैं, और यही हमें मीराँ के जीवन में दिखलाई देता है।

मीराँबाई और नरसी मेहता

नरसी मेहता, गुजरात के प्रसिद्ध भक्त-कवि और मीराँ की प्रगाढ़ भक्ति और उनके गार्हस्थ्य जीवन के वैषम्य पर विचार स्वतः ही किया जाता है। नरसी मेहता का जन्म मीराँ से लगभग 5 वर्ष पूर्व जूनागढ़ के एक नागर ब्राह्मण कुल में हुआ था। दोनों ही अपने-अपने वर्ण व वंश की उच्चता और प्रतिष्ठा में बट्टा लगाने के कारण समाज व परिवार में तिरस्कृत हुए और दोनों को ही क्रमशः जाति-बहिष्कार व विषपान, यातना द्वारा दण्डित करने के अनेकानेक प्रयत्न किये गये। दोनों ही किसी विघ्न या बाधा से विचलित न होकर, ईश्वर के भजन-कीर्तन को ही अपनी

दिनचर्या मानकर, एक भाव से उस एकमात्र कार्यक्रम को ही निभाते रहे।

नरसी ने अपने इकलौते पुत्र की मृत्यु पर भी कहा कि मानो अच्छा ही हुआ, अब मैं भगवद्भजन में अधिक समय व्यतीत कर सकूँगा। मीराँबाई की मनोवृत्ति भी इन जैसी भावनाओं से ही प्रेरित हुआ करती और वे भी इस कारण सुख-दुख से निर्लिप्त-सी रहा करती थीं।

इन दोनों भक्त-कवियों ने ही पदों की रचना की है और विनय के पद दोनों के ही समान हैं। मीराँ के श्रृंगार रस के पद अधिक संयत और मर्यादित हैं। मीराँ के पद अधिकतर हिन्दी में ही हैं जबकि नरसी के पद गुजराती भाषा में हैं।

मीराँ और जायसी

मलिक मुहम्मद जायसी उम्र में मीराँ से कदाचित् कुछ बड़े थे। मीराँ इनकी मृत्यु के पश्चात् भी बहुत वर्ष तक जीवित रही थीं। जायसी के दोहा-चौपाइयाँ उनके ग्रंथ 'पद्मावत' में संकलित हैं जोकि एक प्रेम-गाथा है। जायसी की उक्त रचना एक प्रबंधकाव्य है और उसकी भाषा अवधी है। किंतु मीराँ ने अपने फुटकर पद अधिकतर ब्रजभाषा या राजस्थानी में रचे हैं।

जायसी और मीराँ दोनों ही के द्वारा प्रदर्शित प्रेम आरम्भ से ही विरह-गर्भित व अलौकिक है और दोनों ने ही उसके कारण-स्वरूप किसी पूर्व-संबंध की ओर संकेत किया है।

सैद्धांतिक दृष्टि से बहुत कुछ साम्य होने पर भी इन दोनों ही कवियों की रचनाओं में परिस्थिति-भेद के कारण, पूरी भिन्नता भी दिखलाई देती है। उदाहरण के लिए जायसी ने अपने काव्य ग्रंथ में प्रेमी और प्रेमपात्र दोनों पक्षों की दशा व पारस्परिक आकर्षण आदि संबंधी व्यवहारों को चित्रित करने की चेष्टा की है, किंतु मीराँ ने केवल एक ही पक्ष, अर्थात् प्रेमिका की मनोवस्था को, उसी के शब्दों में चित्रित किया है।

□□